(गूलर) के वृक्षके नीचे जाय। वहाँ उत्तम मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल बनावे। तत्पश्चात् उस औदुम्बर-मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा वीणापुस्तकधारिणी वरदायिनी सरस्वतीदेवीका स्वस्थचित्तसे आवाहन एवं पूजन करे। चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कुङ्कुम, पुष्प, धूप, नैवेद्य एवं नारियल आदिके द्वारा पूजन करके अपमृत्युनिवारणके लिये वेदवेत्ता ब्राह्मणको अलङ्कारसहित दूध देनेवाली सवत्सा गाय दान करे। उस समय ब्राह्मणसे इस प्रकार कहे—'हे विप्र! मैं अपमृत्युका निवारण करनेके लिये संसारसमुद्रसे तारनेवाली यह सीधी-सादी गाय आपको दे रहा हूँ।' यदि गाय न मिल सके तो ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक एक जोड़ा जूता ही अर्पण करे। तदनन्तर पूजा समाप्त करके भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए अपने कुटुम्बके श्रेष्ठ वयोवृद्ध पुरुषोंको श्रद्धाभक्तिके साथ प्रणाम करे। फिर अनेक प्रकारके सुन्दर फलोंद्वारा अपने स्वजनोंको तृप्त करे। उसके बाद अपनी सहोदरा बड़ी भगिनीके घर जाय और उसे भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए कहे—'सौभाग्यवती बहिन! तुम कल्याणमयी हो। मैं अपने कल्याणके लिये तुम्हारे चरणारविन्दोंमें प्रणाम करनेके उद्देश्यसे तुम्हारे घर आया हूँ।' ऐसा कहकर बहिनको भगवद्बुद्धिसे प्रणाम करे। तब बहिन भाईसे यह उत्तम वचन कहे—'भैया! आज मैं तुम्हें पाकर धन्य हो गयी। आज सचमुच मैं मङ्गलमयी हूँ। कुलदीपक! आज अपनी आयुवृद्धिके लिये तुम्हें मेरे घरमें भोजन करना चाहिये। मेरे सहोदर भैया! पूर्वकालमें इसी कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको यमुनाजीने अपने भाई यमराजको अपने ही घरपर भोजन कराया और उनका सत्कार किया था। उस दिन कर्मपाशमें बँधे हुए नारकीय पापियोंको भी यमराज छोड़ देते हैं, जिससे वे अपनी इच्छाके अनुसार घूमते हैं। इस तिथिमें विद्वान् पुरुष भी प्रायः अपने घर भोजन नहीं करते।' बहिनके ऐसा कहनेपर व्रतवान्

पुरुष वस्त्र और आभूषणोंसे हर्षपूर्वक उसका पूजन करे। बड़ी बहिनको प्रणाम करके उसका आशीर्वाद ले। तत्पश्चात् सभी बहिनोंको वस्त्र और आभूषण देकर सन्तुष्ट करे। अपनी सगी बहिन न होनेपर चाचाकी पुत्री अथवा पिताकी बहिनके घर जाकर आदरपूर्वक भोजन करे।

नारद! जो इस प्रकार यमद्वितीयाका व्रत करता है, वह अपमृत्युसे मुक्त हो पुत्र-पौत्र आदिसे सम्पन्न होता है और अन्तमें मोक्ष पाता है। ये सभी व्रत और नाना प्रकारके दान गृहस्थके लिये ही योग्य हैं। व्रतमें लगा हुआ जो पुरुष यमद्वितीयाकी इस कथाको सुनता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है, ऐसा माधवका कथन है। कार्तिक शुक्लकी द्वितीयाको यमुनाजीमें स्नान करनेवाला पुरुष यमलोकका दर्शन नहीं करता। जिन्होंने यमद्वितीयाके दिन अपनी सौभाग्यवती बहिनोंको वस्त्रदान आदिसे सन्तुष्ट किया है, उन्हें एक वर्षतक कलह अथवा शत्रुभयका सामना नहीं करना पड़ता। उस तिथिको यमुनाजीने बहिनके स्नेहसे यमराजदेवको भोजन कराया था। इसलिये उस दिन जो बहिनके हाथसे भोजन करता है, वह धन एवं उत्तम सम्पदाको प्राप्त होता है। राजाओंने जिन कैदियोंको कारागृहमें डाल रखा हो, उन्हें यमद्वितीयाके दिन बहिनके घर भोजन करनेके लिये अवश्य भेजना चाहिये। वह भी न हो तो मौसी अथवा मामाकी पुत्रीको बहिन माने अथवा गोत्र या कुटुम्बके सम्बन्धसे किसीके साथ बहिनका नाता जोड़ ले। सबके अभावमें किसी भी समान वर्णकी स्त्रीको बहिन मान ले और उसीका आदर करे। वह भी न मिल सके तो किसी गाय या नदी आदिको ही बहिन बना ले। उसके भी अभावमें किसी जंगल, झाड़ीको ही बहिन मानकर वहाँ भोजन करे। यमद्वितीयाको कभी भी अपने घर भोजन न करे। भाईके भोजनमें वही द्वितीया ग्राह्य है, जो दोपहरके बादतक मौजूद रहे।
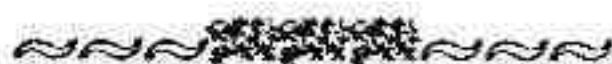
आँवलेके वृक्षकी उत्पत्ति और उसका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—कार्तिकके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको आँवलेका पूजन करे। आँवलेका महान् वृक्ष सब पापोंका नाश करनेवाला है। उक्त चतुर्दशीका नाम वैकुण्ठचतुर्दशी है। उस दिन आँवलेकी छायामें जाकर मनुष्य राधासहित देवेश्वर श्रीहरिका पूजन करे। तदनन्तर आँवलेकी एक सौ आठ प्रदक्षिणा करे। फिर साष्टाङ्ग प्रणाम करके परमेश्वर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी प्रार्थना करे। आँवलेकी छायामें बैठकर इस कथाको सुने, फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और यथाशक्ति दक्षिणा दे। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होनेपर मोक्षदायक श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं।

पूर्वकालमें जब सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो गया था, समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे, उस समय देवाधिदेव सनातन परमात्मा ब्रह्माजी अविनाशी परब्रह्मका जप करने लगे थे। ब्रह्मका जप करते-करते उनके आगे श्वास निकला। साथ ही भगवद्दर्शनके अनुरागवश उनके नेत्रोंसे जल निकल आया। प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण वह जलकी बूँद पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसीसे आँवलेका महान् वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसमें बहुत-सी शाखाएँ और उपशाखाएँ निकली थीं। वह फलोंके भारसे लदा हुआ था। सब वृक्षोंमें सबसे पहले आँवला ही प्रकट हुआ, इसलिये उसे 'आदिरोह' कहा गया। ब्रह्माने पहले आँवलेको उत्पन्न किया। उसके बाद समस्त प्रजाकी सृष्टि की। जब देवता आदिकी भी सृष्टि हो गयी तब वे उस स्थानपर आये जहाँ भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाला आँवलेका वृक्ष था। उसे देखकर देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई—'यह आँवलेका वृक्ष सब वृक्षोंसे श्रेष्ठ है; क्योंकि यह भगवान् विष्णुको प्रिय है। इसके स्मरणमात्रसे मनुष्य गोदानका फल प्राप्त करता है। इसके दर्शनसे दुगुना और फल खानेसे तिगुना

पुण्य होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके आँवलेके वृक्षका सेवन करना चाहिये। क्योंकि वह भगवान् विष्णुको परम प्रिय एवं सब पापोंका नाश करनेवाला है, अत: समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये आँवलेके वृक्षका पूजन करना उचित है।'

जो मनुष्य कार्तिकमें आँवलेके वनमें भगवान् श्रीहरिकी पूजा तथा आँवलेकी छायामें भोजन करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। आँवलेकी छायामें वह जो भी पुण्य करता है, वह कोटिगुना हो जाता है। प्राचीन कालकी बात है, कावेरीके उत्तर तटपर देवशर्मा नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। उनके एक पुत्र हुआ जो बड़ा दुराचारी निकला। पिताने उसे हितकी बात बताते हुए कहा—'बेटा! इस समय कार्तिकका महीना है जो भगवान् विष्णुको बहुत ही प्रिय है। तुम इसमें स्नान, दान, व्रत और नियमोंका पालन करो; तुलसीके फूलसहित भगवान् विष्णुकी पूजा करो। भगवान्के लिये दीप-दान, नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करो।' पिताकी यह बात सुनकर वह दुष्टात्मा पुत्र क्रोधसे जल उठा, उसके ओष्ठ फड़कने लगे और उसने पिताकी निन्दा करते हुए कहा—'तात! मैं कार्तिकमें पुण्य-संग्रह नहीं करूँगा।' पुत्रका यह उद्दण्डतापूर्ण वचन सुनकर देवशर्माने क्रोधपूर्वक कहा—'ओ दुर्बुद्धि! तू वृक्षके खोखलेमें चूहा हो जा।' इस शापके भयसे डरे हुए पुत्रने पिताको नमस्कार करके पूछा—'पूज्यवर! उस घृणित योनिसे मेरी मुक्ति कैसे होगी, यह बताइये।' इस प्रकार पुत्रके द्वारा प्रसन्न किये जानेपर ब्राह्मणने शापनिवृत्तिका कारण बताया—'जब तुम भगवान्को प्रिय लगनेवाले कार्तिकव्रतका पवित्र माहात्म्य सुनोगे, उस समय उस कथाके श्रवणमात्रसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।' पिताके ऐसा कहनेपर वह उसी क्षण चूहा हो गया और कई वर्षोंतक सघन वनमें निवास करता

रहा। एक दिन कार्तिकमासमें विश्वामित्रजी अपने शिष्योंके साथ उधर आ निकले तथा नदीमें स्नान करके भगवान्‌की पूजा करनेके पश्चात् आँवलेकी छायामें बैठे। वहाँ बैठकर वे अपने शिष्योंको कार्तिकमासका माहात्म्य सुनाने लगे। उसी समय कोई दुराचारी व्याध शिकार खेलता हुआ वहाँ आया। वह प्राणियोंकी हत्या करनेवाला तो था ही, ऋषियोंको देखकर उन्हें भी मार डालनेकी इच्छा करने लगा। परंतु उन महात्माओंके दर्शनसे उसके भीतर सुबुद्धि जाग उठी। उसने ब्राह्मणोंको नमस्कार करके कहा—'आपलोग यहाँ क्या करते हैं?' उसके ऐसा पूछनेपर विश्वामित्र बोले—'कार्तिकमास सब महीनोंमें श्रेष्ठ बताया जाता है। उसमें जो कर्म किया जाता है वह बरगदके बीजकी भाँति बढ़ता है। जो कार्तिकमासमें स्नान, दान और पूजन करके ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसका वह पुण्य अक्षय फल देनेवाला होता है।'

व्याधकी प्रेरणासे विश्वामित्रजीके कहे हुए इस धर्मको सुनकर वह शापभ्रष्ट ब्राह्मणकुमार चूहेका शरीर छोड़कर तत्काल दिव्य देहसे युक्त हो गया और विश्वामित्रको प्रणाम करके अपना वृत्तान्त निवेदन कर ऋषिकी आज्ञा ले विमानपर बैठकर स्वर्गको चला गया। इससे विश्वामित्र और व्याध दोनोंको बड़ा विस्मय हुआ। व्याध भी कार्तिक-व्रतका पालन करके भगवान् विष्णुके धाममें गया। इसलिये कार्तिकमें सब प्रकारसे प्रयत्न करके आँवलेकी छायामें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख कथा-श्रवण करे। जो ब्राह्मण कार्तिकमासमें आँवले और तुलसीकी माला धारण करता है, उसे अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य आँवलेकी छायामें बैठकर दीपमाला समर्पित करता है, उसको अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। विशेषतः तुलसी-वृक्षके नीचे श्रीराधा और श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये।

तुलसीके अभावमें यह शुभ पूजा आँवलेके नीचे करनी चाहिये। जो आँवलेकी छायाके नीचे कार्तिकमें ब्राह्मण-दम्पतिको एक बार भी भोजन देकर स्वयं भी भोजन करता है, वह अन्न-दोषसे मुक्त हो जाता है। लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य सदा आँवलोंसे स्नान करे। विशेषतः एकादशी तिथिको आँवलेसे स्नान करनेपर भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं। नवमी, अमावास्या, सप्तमी, संक्रान्ति-दिन, रविवार, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके दिन आँवलेसे स्नान नहीं करना चाहिये*। जो मनुष्य आँवलेकी छायामें बैठकर पिण्डदान करता है, उसके पितर भगवान् विष्णुके प्रसादसे मोक्षको प्राप्त होते हैं। तीर्थ या घरमें जहाँ-जहाँ मनुष्य आँवलेसे स्नान करता है, वहाँ-वहाँ भगवान् विष्णु स्थित होते हैं। जिसके शरीरकी हड्डियाँ आँवलेके स्नानसे धोयी जाती हैं, वह फिर गर्भमें वास नहीं करता। जिनके सिरके बाल आँवलामिश्रित जलसे रँगे जाते हैं, वे मनुष्य कलियुगके दोषोंका नाश करके भगवान् विष्णुको प्राप्त होते हैं। जिस घरमें सदा आँवला रखा रहता है, वहाँ भूत, प्रेत, कूष्माण्ड और राक्षस नहीं जाते। जो कार्तिकमें आँवलेकी छायामें बैठकर भोजन करता है, उसके एक वर्षतक अन्न-संसर्गसे उत्पन्न हुए पापका नाश हो जाता है।

---
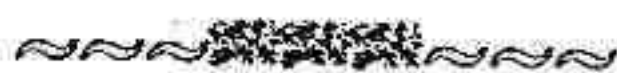
* नवम्यां दर्शे सप्तम्यां संक्रान्तौ रविवासरे । चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत्॥
(स्क० पु० वै० का० मा० १२। ७५)

गुणवतीका कार्तिकव्रतके पुण्यसे सत्यभामाके रूपमें अवतार तथा भगवान्‌के द्वारा शङ्खासुरका वध और वेदोंका उद्धार

सूतजी कहते हैं—एक समय हर्षोल्लाससे प्रसन्नमुखवाली देवी सत्यभामाने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ और मेरा जीवन सफल है। प्रभो! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा दान, व्रत अथवा तप किया है, जिससे मर्त्यलोकमें जन्म लेकर भी मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी हुई हूँ? जन्मान्तरमें मेरा कैसा स्वभाव था, मैं कौन थी और किसकी पुत्री थी जो इस जन्ममें आपकी प्रियतमा पत्नी हुई? ये सब बातें मुझे बताइये।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! सत्ययुगके अन्तमें हरद्वारमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम देवशर्मा था। वे अत्रिकुलमें उत्पन्न हुए थे और वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। उनकी अवस्था बहुत अधिक हो चली थी, किंतु उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। केवल एक कन्या थी, जिसका नाम गुणवती था। देवशर्माने चन्द्र नामक अपने शिष्यको ही अपनी पुत्री ब्याह दी और उसीको पुत्रकी भाँति माना। चन्द्र जितेन्द्रिय तथा आज्ञाकारी था; वह देवशर्माको पिताके ही समान मानकर उनकी सेवा करता था। एक दिन वे दोनों कुश लानेके लिये वनमें गये; वहाँ यमराजके समान आकारवाले किसी विकराल राक्षसने उन दोनोंको मार डाला। वे दोनों अपने-अपने पुण्यके प्रभावसे भगवान् विष्णुके लोकमें गये। उनके मारे जानेका समाचार सुनकर गुणवती पिता और पतिके वियोगदु:खसे पीड़ित होकर करुणस्वरमें विलाप करने लगी। उसने घरका सारा सामान बेचकर अपनी शक्तिके अनुसार उन दोनोंका पारलौकिक कर्म सम्पन्न किया। उसके बाद

वह उसी नगरमें निवास .करने लगी। जीवित रहनेपर भी गुणवती संसारके लिये मर चुकी थी। उसने होश सँभालनेके बादसे मृत्युपर्यन्त दो व्रतोंका विधिपूर्वक पालन किया—एक तो एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिकमासका भली-भाँति सेवन। इस प्रकार गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिकका व्रत किया करती थी। एक समय, जब कि वह रुग्णा थी, उसके सारे अङ्ग दुर्बल हो गये थे और ज्वरसे वह बहुत पीड़ित थी, किसी तरह धीरे-धीरे चलकर गङ्गाजीमें स्नान करनेके लिये गयी। ज्योंही जलके भीतर घुसी, शीतसे पीड़ित हो काँपती हुई गिर पड़ी। उस व्याकुलताकी दशामें ही उसने देखा, आकाशसे विमान उतर रहा है। मृत्युके पश्चात् वह दिव्य रूपसे उस विमानपर बैठकर वैकुण्ठलोकको चली गयी। कार्तिकव्रतके पुण्यसे वह मेरे समीप रहने लगी। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे जब मैं इस पृथ्वीपर आया, तब मेरे साथ मेरे समस्त पार्षद भी यहाँ आये। भामिनि! ये सब यदुवंशी मेरे पार्षदगण ही हैं। पूर्वजन्मके देवशर्मा ही तुम्हारे पिता सत्राजित् हुए और वे चन्द्र नामक ब्राह्मण ही इस समय अक्रूर हुए हैं तथा तुम वही कल्याणमयी गुणवती हो। कार्तिकव्रतके पुण्यसे तुम मेरे लिये अधिक प्रसन्नता देनेवाली बन गयी। पूर्वजन्ममें तुमने जो मेरे मन्दिरके द्वारपर तुलसीकी वाटिका लगा रखी थी, उसीका फल है कि इस समय तुम्हारे आँगनमें यह कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। तुमने जो मृत्युपर्यन्त कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके प्रभावसे तुम्हारा मुझसे कभी भी वियोग नहीं होगा।

प्रिये! पूर्वकालमें राजा पृथु और महर्षि नारदका इस विषयमें जो संवाद हुआ है, उसको सुनो। पृथुके पूछनेपर नारदजीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया। प्राचीनकालमें शङ्ख नामक एक असुर था, जो समुद्रसे उत्पन्न हुआ था। उसने इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंके

अधिकार छीन लिये। देवता मेरुगिरिकी दुर्गम कन्दराओंमें छिपकर रहने लगे। उस समय दैत्यने विचार किया—'यद्यपि मैंने देवताओंको जीत लिया है तथापि वे बलवान् दिखायी देते हैं। अब इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिये। यह बात तो मुझे अच्छी तरह मालूम है कि देवता वेदमन्त्रोंके बलसे ही प्रबल प्रतीत होते हैं। अतः मैं वेदोंका ही अपहरण करूँगा। इससे सब देवता निर्बल हो जायँगे।' ऐसा निश्चय करके वह दैत्य ब्रह्माजीके सत्यलोकसे शीघ्र ही वेदोंको हर लाया। उसके द्वारा ले जाये जाते हुए वेद भयसे उसके चंगुलसे निकल भागे और यज्ञ, मन्त्र एवं बीजोंके साथ जलमें समा गये। शङ्खासुर उन्हें ढूँढ़ता हुआ समुद्रके भीतर घूमने लगा, किंतु उसने कहीं भी एक जगह वेदमन्त्रोंको नहीं देखा। इधर देवताओंने भगवान् विष्णुके पास जाकर उनकी स्तुति की। तब भगवान् जगे और इस प्रकार बोले—'देवताओ! मैं तुम्हारे गीत, वाद्य आदि मङ्गल साधनोंसे प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके लिये उद्यत हूँ। कार्तिक शुक्लपक्षकी एकादशीको तुमने मुझे जगाया है, इसलिये यह तिथि मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी और माननीय है। शङ्खासुरके द्वारा हरे गये सम्पूर्ण वेद जलमें स्थित हैं। मैं सागरपुत्र शङ्खका वध करके उन वेदोंको अभी लाये देता हूँ। इस कार्तिकमासमें जो श्रेष्ठ मनुष्य प्रातःकाल स्नान करते हैं, वे सब यज्ञके अवभृथ-स्नानद्वारा भलीभाँति नहा लेते हैं। आजसे मैं भी कार्तिकमें जलके भीतर निवास करूँगा। तुम सब देवता भी मुनीश्वरोंसहित मेरे साथ जलमें आओ।' ऐसा कहकर मछलीके समान रूप धारण करके भगवान् विष्णु आकाशसे जलमें गिरे। फिर, शङ्खासुरको मारकर भगवान् विष्णु बदरीवनमें आ गये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—'मुनीश्वरो! तुम जलके भीतर बिखरे हुए वेदमन्त्रोंकी खोज करो और

जितनी जल्दी हो सके उन्हें सागरके जलसे बाहर निकाल लाओ। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरता हूँ।'

तब उन तपोबलसम्पन्न महर्षियोंने यज्ञ और बीजोंसहित सम्पूर्ण वेदमन्त्रोंका उद्धार किया। उनमेंसे जितने मन्त्र जिस ऋषिने उपलब्ध किये, वही उन मन्त्रोंका उस दिनसे ऋषि माना जाने लगा। तदनन्तर सब ऋषि एकत्र होकर प्रयागमें गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णुको उपलब्ध हुए सभी वेदमन्त्र समर्पित कर दिये। सब वेदोंको पाकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने देवताओं और ऋषियोंके साथ प्रयागमें अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होनेपर सब देवताओंने भगवान्से यह निवेदन किया—

देवता बोले—देवाधिदेव जगन्नाथ! इस स्थानपर ब्रह्माजीने खोये हुए वेदोंको पुनः प्राप्त किया है और हमने भी यहाँ आपके प्रसादसे यज्ञभाग पाये हैं। अतः यह स्थान पृथ्वीपर सबसे श्रेष्ठ, पुण्यकी वृद्धि करनेवाला एवं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला हो। साथ ही यह समय भी महापुण्यमय और ब्रह्मघाती आदि महापापियोंकी भी शुद्धि करनेवाला हो तथा यह स्थान यहाँ दिये हुए दानको अक्षय बना देनेवाला भी हो, यह वर दीजिये।

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ! तुमने जो कुछ कहा है, वह मुझे भी स्वीकार है; तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। आजसे यह स्थान ब्रह्मक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध होगा। सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गङ्गाको ले आयेंगे और वह यहाँ सूर्यकन्या यमुनासे मिलेंगी। ब्रह्माजी और तुम सब देवता मेरे साथ यहाँ निवास करो। आजसे यह तीर्थ तीर्थराजके नामसे विख्यात होगा। तीर्थराजके दर्शनसे तत्काल सब पाप नष्ट हो जायँगे। सूर्य जब मकर राशिमें स्थित होंगे, उस समय

यहाँ स्नान करनेवाले मनुष्योंके सब पापोंका यह तीर्थ नाश करेगा। यह काल भी मनुष्योंके लिये सदा महान् पुण्यफल देनेवाला होगा। माघमें सूर्यके मकर राशिमें स्थित होनेपर यहाँ स्नान करनेसे सालोक्य आदि फल प्राप्त होंगे।

देवाधिदेव भगवान् विष्णु देवताओंसे ऐसा कहकर ब्रह्माजीके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् इन्द्रादि देवता भी अपने अंशसे प्रयागमें रहते हुए वहाँसे अन्तर्धान हो गये। जो मनुष्य कार्तिकमें तुलसीजीकी जड़के समीप श्रीहरिका पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वैकुण्ठधामको जाता है।

कार्तिकव्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार

नारदजी कहते हैं—कार्तिकके उद्यापनमें तुलसीके मूल प्रदेशमें भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, क्योंकि वह उन्हें अधिक प्रीति प्रदान करनेवाली मानी गयी है। राजन्! जिसके घरमें तुलसीवन है, वह घर तीर्थस्वरूप है; वहाँ यमराजके दूत नहीं आते। तुलसीका वन सदा सब पापोंका नाश करनेवाला तथा अभीष्ट कामनाओंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मनुष्य तुलसीका बगीचा लगाते हैं, वे यमराजको नहीं देखते। नर्मदाका दर्शन, गङ्गाका स्नान और तुलसीवनका संसर्ग—ये तीनों एक समान कहे गये हैं। जो तुलसीकी मञ्जरीसे संयुक्त होकर प्राणत्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी यमराज उसकी ओर नहीं देख सकते। जो मनुष्य आँवलेके फलों और तुलसीके पत्तोंसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करता है, उसे गङ्गास्नान करनेका फल प्राप्त होता है।

पूर्वकालकी बात है, सह्यपर्वतपर करवीरपुरमें धर्मदत्त नामसे

विख्यात कोई धर्मज्ञ ब्राह्मण थे। एक दिन कार्तिकमासमें भगवान् विष्णुके समीप जागरण करनेके लिये वे भगवान्‌के मन्दिरकी ओर चले। उस समय एक पहर रात बाकी थी। भगवान्‌के पूजनकी सामग्री साथ लिये जाते हुए ब्राह्मणने मार्गमें देखा एक भयङ्कर राक्षसी आ रही है। उसे देखते ही ब्राह्मण भयसे थर्रा उठे। उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने साहस करके पूजाकी सामग्री तथा जलसे ही उस राक्षसीके ऊपर प्रहार किया। उन्होंने हरिनामका स्मरण करके तुलसीदलमिश्रित जलसे उसको मारा था, इसलिये उसका सारा पातक नष्ट हो गया। अब उसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त हुई दुर्दशाका स्मरण हो आया। उसने ब्राह्मणको दण्डवत् प्रणाम करके इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फलसे इस दशाको पहुँची हूँ। अब कैसे मुझे उत्तम गतिकी प्राप्ति होगी?'

धर्मदत्तने पूछा—किस कर्मके फलसे तुम इस दशाको पहुँची हो? कहाँकी रहनेवाली हो? तुम्हारा नाम क्या है और आचार-व्यवहार कैसा है? ये सारी बातें मुझे बताओ।

कलहा बोली—ब्रह्मन्! मेरे पूर्वजन्मकी बात है, सौराष्ट्र नगरमें भिक्षु नामके एक ब्राह्मण रहते थे। मैं उन्हींकी पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था और मैं बड़े क्रूरस्वभावकी स्त्री थी। मैंने वचनसे भी कभी अपने पतिका भला नहीं किया, उन्हें कभी मीठा भोजन नहीं परोसा। सदा अपने स्वामीको धोखा ही देती रही। मुझे कलह विशेष प्रिय था, इससे मेरे पतिका मन मुझसे सदा उद्विग्न रहा करता था। अन्ततोगत्वा उन्होंने दूसरी स्त्रीसे विवाह करनेका निश्चय कर लिया। तब मैंने विष खाकर अपने प्राण त्याग दिये। फिर यमराजके दूत आये और मुझे बाँधकर पीटते हुए यमलोकमें ले गये। वहाँ यमराजने मुझे देखकर चित्रगुप्तसे पूछा—'चित्रगुप्त! देखो तो सही इसने कैसा

कर्म किया है? जैसा इसका कर्म हो, उसके अनुसार यह शुभ या अशुभ प्राप्त करे।'

चित्रगुप्तने कहा—इसका किया हुआ कोई भी शुभ कर्म नहीं है। यह स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती थी और अपने स्वामीको उसमेंसे कुछ भी नहीं देती थी। इसने सदा अपने स्वामीसे द्वेष किया है, इसलिये यह चमगादुरी होकर रहे तथा सदा कलहमें ही इसकी प्रवृत्ति रही है, इसलिये यह विष्ठाभोजी सूकरीकी योनिमें रहे। जिस बरतनमें भोजन बनाया जाता है, उसीमें यह सदा अकेली खाया करती थी। अतः उसके दोषसे यह अपनी ही सन्तानका भक्षण करनेवाली बिल्ली हो। इसने अपने पतिको निमित्त बनाकर आत्मघात किया है, इसलिये यह अत्यन्त निन्दनीय स्त्री प्रेतके शरीरमें भी कुछ कालतक अकेली ही रहे। इसे यमदूतोंके द्वारा निर्जल प्रदेशमें भेज देना चाहिये, वहाँ दीर्घकालतक यह प्रेतके शरीरमें निवास करे। उसके बाद यह पापिनी शेष तीन योनियोंका भी उपभोग करेगी।

कलहा कहती है—विप्रवर! मैं वही पापिनी कलहा हूँ। इस प्रेतशरीरमें आये मुझे पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं सदा भूख-प्याससे पीड़ित रहा करती हूँ। एक बनियेके शरीरमें प्रवेश करके मैं इस दक्षिण देशमें कृष्णा और वेणीके सङ्गमतक आयी हूँ। ज्योंही सङ्गम-तटपर पहुँची, त्योंही भगवान् शिव और विष्णुके पार्षदोंने मुझे बलपूर्वक उसके शरीरसे दूर भगा दिया। तबसे मैं भूखका कष्ट सहन करती हुई इधर-उधर घूम रही हूँ। इतनेमें ही आपके ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी है। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलका संसर्ग पाकर मेरे सब पाप नष्ट हो गये। द्विजश्रेष्ठ! अब आप ही कोई उपाय कीजिये। बताइये मैं इस प्रेतशरीरसे और भविष्यमें होनेवाली भयङ्कर तीन योनियोंसे किस प्रकार मुक्त होऊँगी?

कलहाका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ धर्मदत्तने बहुत समयतक सोच-विचार करनेके बाद कहा—'तीर्थमें दान और व्रत आदि सत्कर्म करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते है, परंतु तू तो प्रेतके शरीरमें है; अत: उन कर्मोंको करनेकी अधिकारिणी नहीं है। इसलिये मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो कार्तिकका व्रत किया है, उसके पुण्यका आधा भाग मैं तुझे देता हूँ। तू उसीसे सद्गतिको प्राप्त हो जा।' यों कहकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर-मन्त्रका श्रवण कराते हुए तुलसीमिश्रित जलसे ज्योंही उसका अभिषेक किया, त्यों ही वह प्रेतयोनिसे मुक्त हो प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजस्विनी एवं दिव्य रूपधारिणी देवी हो गयी और सौन्दर्यमें लक्ष्मीजीकी समानता करने लगी। तदनन्तर उसने भूमिपर दण्डकी भाँति गिरकर ब्राह्मणदेवताको प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीमें कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपके प्रसादसे आज मैं इस नरकसे छुटकारा पा गयी। मैं पापके समुद्रमें डूब रही थी, आप मेरे लिये नौकाके समान हो गये।' वह इस प्रकार ब्राह्मणसे कह ही रही थी कि आकाशसे एक दिव्य विमान उतरता दिखायी दिया। वह अत्यन्त प्रकाशमान एवं विष्णुरूपधारी पार्षदोंसे युक्त था। विमानके द्वारपर खड़े हुए पुण्यशील और सुशीलने उस देवीको उठाकर श्रेष्ठ विमानपर चढ़ा लिया। तब धर्मदत्तने बड़े विस्मयके साथ उस विमानको देखा और विष्णुरूपधारी पार्षदोंको देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। पुण्यशील और सुशीलने प्रणाम करनेवाले ब्राह्मणको उठाया और उसकी सराहना करते हुए कहा—'द्विजश्रेष्ठ! तुम्हें साधुवाद है; क्योंकि तुम सदा भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहते हो, दीनोंपर दया करते हो, सर्वज्ञ हो तथा भगवान् विष्णुके व्रतका पालन करते हो। तुमने बचपनसे लेकर अबतक जो कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके आधे भागका दान करनेसे तुम्हें दूना पुण्य प्राप्त हुआ है और

इसके सैकड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो गये हैं। अब यह वैकुण्ठधाममें ले जायी जा रही है। तुम भी इस जन्मके अन्तमें अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाओगे। धर्मदत्त! जिन्होंने तुम्हारे समान भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना की है, वे धन्य और कृतकृत्य हैं। इस संसारमें उन्हींका जन्म सफल है। भलीभाँति आराधना करनेपर भगवान् विष्णु देहधारी प्राणियोंको क्या नहीं देते हैं? उन्होंने ही उत्तानपादके पुत्रको पूर्वकालमें ध्रुवपदपर स्थापित किया। उनके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे समस्त जीव सद्गतिको प्राप्त होते हैं। पूर्वकालमें ग्राहग्रस्त गजराज उन्हींके नामोंका स्मरण करनेसे मुक्त हुआ था। तुमने जन्मसे ही लेकर जो भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले व्रतका अनुष्ठान किया है, उससे बढ़कर न यज्ञ है, न दान है और न तीर्थ हैं। विप्रवर! तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने जगद्गुरु भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला ऐसा व्रत किया है कि जिसके आधे भागके फलको पाकर यह स्त्री हमारे साथ भगवान्‌के लोकमें जा रही है!'

भक्तिके प्रभावसे विष्णुदास और राजा चोलका भगवान्‌के पार्षद होना

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार विष्णुपार्षदोंके वचन सुनकर धर्मदत्तने कहा, 'प्रायः सभी मनुष्य भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले श्रीविष्णुकी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थसेवन तथा तपस्याओंके द्वारा विधिपूर्वक आराधना करते हैं। उन समस्त साधनोंमें कौन-सा ऐसा साधन है, जो भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला तथा उनके सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है।'

दोनों पार्षद अपने पूर्वजन्मकी कथा कहने लगे—ब्रह्मन्! पहले

काञ्चीपुरीमें चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। उन्हींके नामपर उनके अधीन रहनेवाले सभी देश चोल नामसे विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डलका शासन करते थे, उस समय उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य दरिद्र, दुःखी, पापमें मन लगानेवाला अथवा रोगी नहीं था। एक समयकी बात है, राजा चोल अनन्तशयन नामक तीर्थमें गये, जहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुने योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन किया था। वहाँ भगवान् विष्णुके दिव्य विग्रहकी राजाने विधिपूर्वक पूजा की। दिव्य मणि, मुक्ताफल तथा सुवर्णके बने हुए सुन्दर पुष्पोंसे पूजन करके राजाने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्योंही बैठे, उसी समय उनकी दृष्टि भगवान्‌के पास आते हुए एक ब्राह्मणपर पड़ी, जो उन्हींकी काञ्चीनगरीके निवासी थे। उनका नाम विष्णुदास था। उन्होंने भगवान्‌की पूजाके लिये अपने हाथमें तुलसीदल और जल ले रखा था। निकट आनेपर उन ब्रह्मर्षिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवाधिदेव भगवान्‌को स्नान कराया और तुलसीकी मञ्जरी तथा पत्तोंसे उनकी विधिवत् पूजा की। राजा चोलने जो पहले रत्नोंसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह सब तुलसीपूजासे ढक गयी। यह देख राजा कुपित होकर बोले—'विष्णुदास! मैंने मणियों तथा सुवर्णसे भगवान्‌की जो पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी; तुमने तुलसीदल चढ़ाकर उसे ढक दिया। बताओ, ऐसा क्यों किया? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम दरिद्र और गवाँर हो! भगवान् विष्णुकी भक्तिको बिलकुल नहीं जानते!'

राजाकी यह बात सुनकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदासने कहा—'राजन्! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है, केवल राजलक्ष्मीके कारण आप घमण्ड कर रहे हैं। बतलाइये तो, आजसे पहले आपने कितने वैष्णवव्रतोंका पालन किया है?' तब नृपश्रेष्ठ चोलने हँसकर कहा—

'तुम तो दरिद्र और निर्धन हो, तुम्हारी भगवान् विष्णुमें भक्ति ही कितनी है? तुमने भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला कोई भी यज्ञ और दान आदि नहीं किया और न पहले कभी कोई देवमन्दिर ही बनवाया है। इतनेपर भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना गर्व है! अच्छा, तो ये सभी ब्राह्मण मेरी बात सुन लें। भगवान् विष्णुके दर्शन पहले मैं करता हूँ, या यह ब्राह्मण। इस बातको आप सब लोग देखें। फिर हम दोनोंमेंसे किसकी भक्ति कैसी है, यह सब लोग स्वतः जान लेंगे।'

ऐसा कहकर राजा अपने राजभवनको चले गये। वहाँ उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णव यज्ञ प्रारम्भ किया। उधर सदैव भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले शास्त्रोक्त नियमोंमें तत्पर विष्णुदास भी व्रतका पालन करते हुए, वहीं भगवान् विष्णुके मन्दिरमें टिक गये। उन्होंने माघ और कार्तिकके उत्तम व्रतका अनुष्ठान, तुलसीवनकी रक्षा, एकादशीको द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रका जप, नृत्य, गीत आदि मङ्गलमय आयोजनोंके साथ प्रतिदिन षोडशोपचारसे भगवान् विष्णुकी पूजा आदि नियमोंका आचरण किया। वे प्रतिदिन चलते, फिरते और सोते—सब समय भगवान् विष्णुका स्मरण किया करते थे। उनकी दृष्टि सर्वत्र सम हो गयी थी। वे सब प्राणियोंके भीतर एकमात्र भगवान् विष्णुको ही स्थित देखते थे। इस प्रकार राजा चोल और विष्णुदास दोनों ही भगवान् लक्ष्मीपतिकी आराधनामें संलग्न थे, दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थित रहते थे और दोनोंकी ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा समस्त कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित हो चुके थे। इस अवस्थामें उन दोनोंने दीर्घकाल व्यतीत किया।

एक दिनकी बात है, विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन

तैयार किया। किंतु कोई अलक्षित रहकर उसको चुरा ले गया। विष्णुदासने देखा भोजन नहीं है, परन्तु उन्होंने दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये उन्हें अवकाश नहीं मिलता। अतः प्रतिदिनके नियमका भङ्ग हो जानेका भय था। दूसरे दिन पुनः उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों-ही भगवान् विष्णुको भोग अर्पण करनेके लिये गये, त्योंही किसीने आकर फिर सारा भोजन हड़प लिया। इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण करता रहा। इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ। वे मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—'अहो! कौन प्रतिदिन आकर मेरी रसोई चुरा ले जाता है। यदि दुबारा रसोई बनाकर भोजन करता हूँ तो सायंकालकी पूजा छूट जाती है! यदि रसोई बनाकर तुरन्त ही भोजन कर लेना उचित हो तो भी मुझसे यह न होगा; क्योंकि भगवान् विष्णुको सब कुछ अर्पण किये बिना कोई भी वैष्णव भोजन नहीं करता। आज उपवास करते मुझे सात दिन हो गये। इस प्रकार मैं व्रतमें कबतक स्थिर रह सकता हूँ। अच्छा आज मैं रसोईकी भलीभाँति रक्षा करूँगा।'

ऐसा निश्चय करके भोजन बनानेके पश्चात् वे वहीं कहीं छिपकर खड़े हो गये। इतनेमें ही उन्हें एक चाण्डाल दिखायी दिया, जो रसोईका अन्न हरकर जानेके लिये तैयार खड़ा था। भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो गया था, मुखपर दीनता छा रही थी, शरीरमें हाड़ और चामके सिवा और कुछ शेष नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका हृदय करुणासे भर आया। उन्होंने भोजन चुरानेवाले चाण्डालकी ओर देखकर कहा—'भैया! जरा ठहरो, ठहरो। क्यों रूखा-सूखा खाते हो? यह घी तो ले लो।' यों कहते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख वह चाण्डाल भयके मारे बड़े वेगसे भागा

और कुछ ही दूरपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चाण्डालको भयभीत और मूर्च्छित देखकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास बड़े वेगसे उसके समीप आये तथा दयावश अपने वस्त्रके छोरसे उसको हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ, तब विष्णुदासने देखा, वहाँ चाण्डाल नहीं है, साक्षात् भगवान् नारायण ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये सामने उपस्थित हैं। अपने प्रभुको प्रत्यक्ष देखकर विष्णुदास सात्त्विक भावोंके वशीभूत हो गये। वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। तब भगवान् विष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने ही जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा—विष्णुदास एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं। विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने शीघ्र ही अपने गुरु महर्षि मुद्गलको बुलाया और इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—'जिसके साथ स्पर्धा करके मैंने इस यज्ञ, दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले ही वैकुण्ठधामको जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया। तथापि अभीतक भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और इस विष्णुदासको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अत: जान पड़ता है भगवान् विष्णु केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभुका दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।'

दोनों पार्षद कहते हैं—यों कहकर राजाने अपने भानजेको राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे बचपनसे ही यज्ञकी दीक्षा लेकर उसीमें संलग्न रहते थे, इसलिये उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ

था। यही कारण है कि उस देशमें अबतक भानजे ही राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं। भानजेको राज्य देकर राजा यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर भगवान् विष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्चस्वरसे निम्नाङ्कित वचन बोले—'भगवान् विष्णु! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाली अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निकुण्डमें कूद पड़े। बस, उसी क्षण भक्तवत्सल भगवान् विष्णु अग्निकुण्डमें प्रकट हो गये। उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बैठाया और उन्हें साथ ले वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया।

नारदजी कहते हैं—राजन्! जो विष्णुदास थे, वे तो पुण्यशील नामसे प्रसिद्ध भगवान्के पार्षद हुए और जो राजा चोल थे, उनका नाम सुशील हुआ। इन दोनोंको अपने ही समान रूप देकर भगवान् लक्ष्मीपतिने अपना द्वारपाल बना लिया।

जय-विजयका चरित्र

धर्मदत्तने पूछा—मैंने सुना है कि जय और विजय भी भगवान् विष्णुके द्वारपाल हैं। उन्होंने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य किया था, जिससे वे भगवान्के समान रूप धारण करके वैकुण्ठधामके द्वारपाल हुए?

दोनों पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! पूर्वकालमें तृणविन्दुकी कन्या देवहूतिके गर्भसे महर्षि कर्दमकी दृष्टिमात्रसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे बड़ेका नाम जय था और छोटेका विजय। पीछे उसी देवहूतिके गर्भसे योगधर्मके जाननेवाले भगवान् कपिल उत्पन्न हुए। जय और विजय सदा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहते थे। वे नित्य अष्टाक्षर

(ॐ नमो नारायणाय) मन्त्रका जप और वैष्णवव्रतोंका पालन करते थे। एक समय राजा मरुत्तने उन दोनोंको अपने यज्ञमें बुलाया। वहाँ जय ब्रह्मा बनाये गये और विजय आचार्य। उन्होंने यज्ञकी सम्पूर्ण विधि पूर्ण की। यज्ञान्तमें अवभृथ-स्नानके पश्चात् राजा मरुत्तने उन दोनोंको बहुत धन दिया। धन लेकर दोनों भाई अपने आश्रमपर गये। वहाँ उस धनका विभाग करते समय दोनोंमें परस्पर लाग-डाँट पैदा हो गयी। जयने कहा—'इस धनको बराबर-बराबर बाँट लिया जाय।' विजयका कहना था—'नहीं। जिसको जो मिला है, वह उसीके पास रहे।' तब जयने क्रोधमें आकर लोभी विजयको शाप दिया—'तुम ग्रहण करके देते नहीं हो, इसलिये ग्राह हो जाओ।' जयके इस शापको सुनकर विजयने भी शाप दिया—'तुमने मदसे भ्रान्त होकर शाप दिया है, इसलिये मातङ्ग (हाथी)-की योनिमें जाओ।' तत्पश्चात् उन्होंने भगवान्‌से शापनिवृत्तिके लिये प्रार्थना की। श्रीभगवान्‌ने कहा—'तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारा वचन कभी असत्य नहीं होगा। तुम दोनों अपने ही दिये हुए इन शापोंको भोगकर फिर मेरे धामको प्राप्त होओगे।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे दोनों गण्डकी नदीके तटपर ग्राह और गज हो गये। उस योनिमें भी उन्हें पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा और वे विष्णुके व्रतमें तत्पर रहे। किसी समय वह गजराज कार्तिकमासमें स्नानके लिये गण्डकी नदीमें गया। उस समय ग्राहने शापके हेतुको स्मरण करते हुए उस गजको पकड़ लिया। ग्राहसे पकड़े जानेपर गजराजने भगवान् रमानाथका स्मरण किया। तब भगवान् विष्णु शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने चक्र चलाकर ग्राह और गजराज दोनोंका उद्धार किया और उन्हें अपने ही जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले गये। तबसे वह स्थान हरिक्षेत्रके

नामसे प्रसिद्ध है। वे ही दोनों विश्वविख्यात जय और विजय हैं, जो भगवान् विष्णुके द्वारपाल हुए हैं।

धर्मदत्त! तुम भी मात्सर्य और दम्भका त्याग करके सदा भगवान् विष्णुके व्रतमें स्थिर रहो, समदर्शी बनो, तुला (कार्तिक), मकर (माघ) और मेष (वैशाख)-के महीनोंमें सदैव प्रातःकाल स्नान करो। एकादशीव्रतके पालनमें स्थिर रहो। तुलसीके बगीचेकी रक्षा करते रहो। ऐसा करनेसे तुम भी शरीरका अन्त होनेपर भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त होओगे। भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले तुम्हारे इस व्रतसे बढ़कर न यज्ञ हैं, न दान हैं और न तीर्थ ही हैं। विप्रवर! तुम धन्य हो, जिसके व्रतके आधे भागका फल पाकर यह स्त्री हमारे द्वारा वैकुण्ठधाममें ले जायी जा रही है।

नारदजी कहते हैं—राजन्! धर्मदत्तको इस प्रकार उपदेश करके वे दोनों विमानचारी पार्षद उस कलहाके साथ वैकुण्ठधामको चले गये। धर्मदत्त जीवनभर भगवान्के व्रतमें स्थिर रहे और देहावसानके बाद उन्होंने अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ वैकुण्ठधाम प्राप्त कर लिया। इस प्राचीन इतिहासको जो सुनता और सुनाता है, वह जगद्गुरु भगवान्की कृपासे उनका सान्निध्य प्राप्त करानेवाली उत्तम गति पाता है।

सांसर्गिक पुण्यसे धनेश्वरका उद्धार, दूसरोंके पुण्य और पापकी आंशिक प्राप्तिके कारण तथा मासोपवास व्रतकी संक्षिप्त विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! नारदजीके मुखसे यह कथा सुनकर राजा पृथुके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारदजीका भलीभाँति पूजन करनेके पश्चात् उन्हें विदा किया। पूर्वकालमें अवन्तिपुरीमें धनेश्वर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह क्रय-विक्रयके कार्यसे घूमता हुआ किसी समय माहिष्मतीपुरीमें जा पहुँचा, जहाँ पापनाशिनी नर्मदा सदैव शोभा पाती है। वहाँ कार्तिकका व्रत करनेवाले बहुत-से मनुष्य अनेक गाँवोंसे स्नान करनेके लिये आये हुए थे। धनेश्वरने उन सबको देखा और अपना सामान बेचता हुआ वह एक मासतक वहीं रहा। वह प्रतिदिन नर्मदाके किनारे घूम-घूमकर स्नान, जप और देवार्चनमें लगे हुए ब्राह्मणोंको देखता और वैष्णवोंके मुखसे भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन सुनता था। इस प्रकार नर्मदा-तटपर रहते हुए उसको जब एक मास बीत गया, तब एक दिन अकस्मात् उसे किसी काले साँपने डँस लिया। इससे विह्वल होकर वह भूमिपर गिर पड़ा। यमदूत उसे बाँधकर ले गये और कुम्भीपाकमें डाल दिया। वहाँ उसके गिरते ही सारा कुण्ड शीतल हो गया; ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें प्रह्लादजीको डालनेसे दैत्योंकी जलायी हुई आग ठंडी हो गयी थी। तदनन्तर यमराज इस विषयमें पूछताछ करने लगे। इतनेमें ही वहाँ नारदजी आये और इस प्रकार बोले—'सूर्यनन्दन! यह नरकोंका उपभोग करने योग्य नहीं है। जो मनुष्य पुण्यकर्म करनेवाले लोगोंका दर्शन, स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करता है, वह उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त कर लेता है। यह धनेश्वर

तो एक मासतक श्रीहरिके कार्तिकव्रतका अनुष्ठान करनेवाले असंख्य मनुष्योंके सम्पर्कमें रहा है, अतः यह उन सबके पुण्यांशका भागी हुआ है। इसको अनिच्छासे पुण्य प्राप्त हुआ है, इसलिये यह यक्षकी योनिमें रहे और पापभोगके रूपमें सब नरकोंका दर्शनमात्र करके ही यमयातनासे मुक्त हो जाय।'

प्रिये! यों कहकर देवर्षि नारद चले गये। तब प्रेतराजने धनेश्वरको नरकोंके समीप ले जाकर उन सबको दिखलाते हुए कहा—'धनेश्वर! महान् भय देनेवाले इन घोर नरकोंकी ओर दृष्टि डालो। इनमें पापी पुरुष सदा दूतोंद्वारा पकाये जाते हैं। इन नरकोंके पृथक्-पृथक् चौरासी भेद हैं। तुम्हें कार्तिकव्रत करनेवाले पुरुषोंका संसर्ग प्राप्त हुआ था, उससे पुण्यकी वृद्धि हो जानेके कारण ये सभी नरक तुम्हारे लिये निश्चय ही नष्ट हो गये हैं।' इस प्रकार धनेश्वरको नरकोंका दर्शन कराकर प्रेतराज उसे यक्षलोकमें ले गये। वहाँ जाकर वह यक्ष हुआ। वही कुबेरके अनुचर 'धनयक्ष' के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार अपनी अत्यन्त प्रिय सत्यभामाको यह कथा सुनाकर भगवान् श्रीकृष्ण सन्ध्योपासना करनेके लिये माताके घरमें गये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यदि कार्तिकव्रत करनेके लिये अपनेमें सामर्थ्य न हो तो अन्य उपायसे भी इसका फल प्राप्त हो सकता है। ब्राह्मणको धन देकर कार्तिकव्रतके उत्तम फलको ग्रहण करे। शिष्यसे, भृत्यवर्गसे, स्त्रियोंसे अथवा अपने किसी विश्वासपात्र मनुष्यसे भी व्रतका पालन करावे। ऐसा करनेसे भी मनुष्य फलका भागी होता है।

नारदजीने पूछा—पितामह! यह कार्तिकव्रत थोड़े परिश्रमद्वारा साध्य होनेवाला और महान् फल देनेवाला है, तो भी मनुष्य इसे क्यों नहीं करते हैं?

ब्रह्माजीने कहा—काम, क्रोध और लोभके वशीभूत होनेवाले मनुष्य व्रत आदि धर्मकृत्य नहीं कर पाते। जो इनसे मुक्त हैं, वे ही धर्मकार्य करते हैं। इस पृथ्वीपर श्रद्धा और मेधा—ये दो वस्तुएँ ऐसी हैं, जो काम, क्रोध आदिका विनाश करनेवाली हैं। इनसे व्याप्त मनुष्य भगवान् विष्णुका श्रवण, कीर्तन आदि करता है। पर जिसकी बुद्धि खोटी है, वह यह सब नहीं करता। इसीसे वह अन्धकारपूर्ण नरकमें गिरता है। पढ़ानेसे, यज्ञ करानेसे और एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेसे मनुष्य दूसरोंके किये हुए पुण्य और पापका चौथाई भाग प्राप्त कर लेता है। एक आसनपर बैठने, एक सवारीपर यात्रा करने तथा श्वाससे शरीरका स्पर्श होनेसे मनुष्य निश्चय ही पुण्य और पापके छठे अंशके फलका भागी होता है। दूसरेके स्पर्शसे, भाषणसे तथा उसकी प्रशंसा करनेसे भी मानव सदा उसके पुण्य और पापके दसवें अंशको पाता है। दर्शन और श्रवणसे अथवा मनके द्वारा उसका चिन्तन करनेसे, वह दूसरेके पुण्य और पापका शतांश प्राप्त करता है। जो दूसरेकी निन्दा करता, चुगली खाता तथा उसे धिक्कार देता है, वह उसके किये हुए पातकको स्वयं लेकर बदलेमें उसे अपना पुण्य देता है। जो मनुष्य किसी पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषकी सेवा करता है, वह यदि उसकी पत्नी, भृत्य और शिष्योंसे भिन्न है तथा उसे उसकी सेवाके अनुरूप कुछ धन नहीं दिया जा रहा है तो वह भी सेवाके अनुसार उस पुण्यात्माके पुण्यफलका भागी होता है। जो एक पंक्तिमें बैठे हुए पुरुषको रसोई परोसते समय छोड़कर आगे बढ़ जाता है, उसके पुण्यका छठा अंश वह छूटा हुआ व्यक्ति पा लेता है। स्नान और सन्ध्या आदि करते समय जो दूसरेका स्पर्श अथवा दूसरेसे भाषण करता है, वह अपने कर्मजनित पुण्यका छठा अंश उसे निश्चय ही दे डालता है। जो धर्मके उद्देश्यसे दूसरोंके

पास जाकर धनकी याचना करता है, उसके उस पुण्यकर्मजनित फलका भागी वह धन देनेवाला भी होता है। जो दूसरोंका धन चुराकर उसके द्वारा पुण्यकर्म करता है, वहाँ कर्म करनेवाला तो पापी होता है तथा जिसका धन चुराकर उस कर्ममें लगाया गया है, वही उसके पुण्यफलको प्राप्त करता है। जो दूसरोंका ऋण चुकाये बिना मर जाता है, उसके पुण्यमेंसे वह धनी अपने धनके अनुरूप हिस्सा बँटा लेता है। जो बुद्धि (सलाह) देनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, साधनसामग्री देनेवाला तथा बल लगानेवाला है, वह भी पुण्य-पापमेंसे छठे अंशको ग्रहण करता है। प्रजाके पुण्य और पापमेंसे छठा अंश राजा लेता है। इसी प्रकार शिष्यसे गुरु, स्त्रीसे उसका पति और पुत्रसे उसका पिता पुण्य-पापका छठा अंश ग्रहण करता है। स्त्री भी यदि अपने पतिके मनके अनुकूल चलनेवाली और सदा उसे सन्तुष्ट रखनेवाली हो तो वह उसके पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती है। जो दूसरेके हाथसे दान आदि पुण्य कर्म करता है, उसके पुण्यका छठा अंश वह कर्ता ही ले लेता है; परंतु यदि वह पुत्र अथवा भृत्य हो तो षष्ठांशका भागी नहीं होता है। वृत्ति देनेवाला पुरुष वृत्ति भोगनेवालेके पुण्यका छठा अंश ले लेता है। किंतु ऐसा तभी होता है जब वह उस वृत्ति भोगनेवालेसे अपनी या दूसरेकी सेवा न कराता हो। इस प्रकार दूसरोंके द्वारा सञ्चित किये हुए पुण्य-पाप बिना दिये हुए भी आ जाते हैं। पूर्वकालमें एक दम्भी तपस्वी पतिव्रता स्त्रीके शुद्ध प्रभावसे, पिता-माताका पूजन देखनेसे, कार्तिकव्रतका सेवन करके उत्तम लोकको प्राप्त हो गया था।

नारदजीने कहा—भगवन्! मैं मासोपवासकी विधि और उसके फलका यथोचित वर्णन सुनना चाहता हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! जैसे देवताओंमें भगवान् विष्णु श्रेष्ठ

हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतोंमें यह मासोपवास व्रत श्रेष्ठ है। अपने शरीरके बलाबलको समझकर मासोपवास व्रत करना चाहिये। आश्विनके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास करके तीस दिनोंके लिये इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये और उतने दिनोंतक भगवान्‌के मन्दिरमें जाकर तीनों समय भक्तिपूर्वक नैवेद्य, धूप, दीप तथा नाना प्रकारके पुष्पोंसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करनी चाहिये। स्वधर्मपरायण मनुष्य और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली सौभाग्यवती अथवा विधवा स्त्री भगवान् वासुदेवकी पूजा करे। दूसरेका अन्न ग्रहण न करे, परंतु स्वयं दूसरोंको अन्न दे। व्रतस्थ पुरुष शरीरमें उबटन लगाना, मस्तकमें तेल मलना, पान खाना और चन्दन आदिका लेप करना छोड़ दे। इसके सिवा अन्य निषिद्ध वस्तुओंका भी त्याग करे। व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य विपरीत कर्ममें लगे रहनेवाले किसी मनुष्यका न तो स्पर्श करे और न उससे वार्तालाप ही करे। गृहस्थ भी देवमन्दिरमें रहकर व्रतका आचरण करे। यथोक्त विधिसे मासोपवासव्रत पूरा करके द्वादशीमें परम पवित्र भगवान् विष्णुका पूजन करे, दक्षिणा दे। मासोपवासके अन्तमें तेरह ब्राह्मणोंका वरण करके वैष्णव यज्ञ करावे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें ताम्बूलसहित दो-दो वस्त्र देकर पूजनपूर्वक विदा करे। इस प्रकार मासोपवासकी विधि बतायी गयी।

तुलसीविवाह और भीष्मपञ्चक-व्रतकी विधि एवं महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिक शुक्ला नवमीको द्वापर युगका प्रारम्भ हुआ है। अतः वह तिथि दान और उपवासमें क्रमशः पूर्वाह्णव्यापिनी तथा पराह्णव्यापिनी हो तो ग्राह्य है। इसी तिथिको (नवमीसे

एकादशीतक) मनुष्य शास्त्रोक्त विधिसे तुलसीके विवाहका उत्सव करे तो उसे कन्यादानका फल होता है। पूर्वकालमें कनककी पुत्री किशोरीने एकादशी तिथिमें सन्ध्याके समय तुलसीकी वैवाहिक विधि सम्पन्न की। इससे वह किशोरी वैधव्य दोषसे मुक्त हो गयी। अब मैं उसकी विधि बतलाता हूँ—एक तोला सुवर्णकी भगवान् विष्णुकी सुन्दर प्रतिमा तैयार करावे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार आधे या चौथाई तोलेकी ही प्रतिमा बनवा ले। फिर तुलसी और भगवान् विष्णुकी प्रतिमामें प्राणप्रतिष्ठा करके स्तुति आदिके द्वारा भगवान्को उठावे। पुनः पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा षोडशोपचारसे पूजा करे। पहले देश-कालका स्मरण करके गणेशपूजन करे, फिर पुण्याहवाचन कराकर नान्दीश्राद्ध करे। तत्पश्चात् वेदमन्त्रोंके उच्चारण और बाजे आदिकी ध्वनिके साथ भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको तुलसीजीके निकट लाकर रखे। प्रतिमाको वस्त्रोंसे आच्छादित किये रहे। उस समय भगवान्का इस प्रकार आवाहन करे—

आगच्छ भगवन् देव अर्चयिष्यामि केशव।
तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदो भव॥

'भगवान् केशव! आइये, देव! मैं आपकी पूजा करूँगा। आपकी सेवामें तुलसीको समर्पित करूँगा। आप मेरे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करें।'

इस प्रकार आवाहनके पश्चात् तीन-तीन बार अर्घ्य, पाद्य और विष्टरका उच्चारण करके इन्हें बारी-बारीसे भगवान्को समर्पित करे। फिर आचमनीय पदका तीन बार उच्चारण करके भगवान्को आचमन करावे। इसके बाद कांस्यके पात्रमें दही, घी और मधु रखकर उसे कांस्यके पात्रसे ही ढक दे तथा भगवान्को अर्पण करते हुए इस प्रकार कहे—'वासुदेव! आपको नमस्कार है, यह मधुपर्क ग्रहण

कीजिये।' तदनन्तर हरिद्रालेपन और अभ्यङ्ग-कार्य सम्पन्न करके गोधूलिकी बेलामें तुलसी और श्रीविष्णुका पूजन पृथक्-पृथक् करना चाहिये। दोनोंको एक-दूसरेके सम्मुख रखकर मङ्गल-पाठ करे। जब भगवान् सूर्य कुछ-कुछ दिखायी देते हों, तब कन्यादानका सङ्कल्प करे। अपने गोत्र और प्रवरका उच्चारण करके आदिकी तीन पीढ़ियोंका भी आवर्तन करे। तत्पश्चात् भगवान्‌से इस प्रकार कहे—

अनादिमध्यनिधन त्रैलोक्यप्रतिपालक।
इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर॥
पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम्।
अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम्॥
पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्द्धिता मया।
त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भोः॥

'आदि, मध्य और अन्तसे रहित त्रिभुवनप्रतिपालक परमेश्वर! इस तुलसीको आप विवाहकी विधिसे ग्रहण करें। यह पार्वतीके बीजसे प्रकट हुई है, वृन्दाकी भस्ममें स्थित रही है तथा आदि, मध्य और अन्तसे शून्य है। आपको तुलसी बहुत ही प्रिय है, अतः इसे मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ। मैंने जलके घड़ोंसे सींचकर और अन्य प्रकारकी सेवाएँ करके अपनी पुत्रीकी भाँति इसे पाला, पोसा और बढ़ाया है, आपकी प्रिया तुलसी मैं आपको ही दे रहा हूँ। प्रभो! आप इसे ग्रहण करें।'

इस प्रकार तुलसीका दान करके फिर उन दोनों (तुलसी और विष्णु)-की पूजा करे। विवाहका उत्सव मनाये। सबेरा होनेपर पुनः तुलसी और विष्णुका पूजन करे। अग्निकी स्थापना करके उसमें द्वादशाक्षरमन्त्रसे खीर, घी, मधु और तिलमिश्रित हवनीय द्रव्यकी एक सौ आठ आहुति दे। फिर 'स्विष्टकृत्' होम करके पूर्णाहुति

दे। आचार्यकी पूजा करके होमकी शेष विधि पूरी करे। उसके बाद भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'देव! प्रभो!! आपकी प्रसन्नताके लिये मैंने यह व्रत किया है। जनार्दन! इसमें जो न्यूनता हो, वह आपके प्रसादसे पूर्णताको प्राप्त हो जाय।'

यदि द्वादशीमें रेवतीका चौथा चरण बीत रहा हो तो उस समय पारण न करे। जो उस समय भी पारण करता है, वह अपने व्रतको निष्फल कर देता है। भोजनके पश्चात् तुलसीके स्वतः गलकर गिरे हुए पत्तोंको खाकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भोजनके अन्तमें ऊख, आँवला और बेरका फल खा लेनेसे उच्छिष्ट-दोष मिट जाता है।

तदनन्तर भगवान्‌का विसर्जन करते हुए कहे—'भगवन्! आप तुलसीके साथ वैकुण्ठधाममें पधारें। प्रभो! मेरे द्वारा की हुई पूजा ग्रहण करके आप सदा सन्तुष्ट रहें।' इस प्रकार देवेश्वर विष्णुका विसर्जन करके मूर्ति आदि सब सामग्री आचार्यको अर्पण करे। इससे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

कार्तिक शुक्लपक्षमें एकादशीको प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान करके पाँच दिनका व्रत ग्रहण करे। बाणशय्यापर सोये हुए महात्मा भीष्मने राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्मका वर्णन किया, जिसे पाण्डवोंके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने भी सुना। उससे प्रसन्न होकर भगवान् वासुदेवने कहा—'भीष्म! तुम धन्य हो, धन्य हो, तुमने धर्मोंका स्वरूप अच्छी तरह श्रवण कराया है। कार्तिककी एकादशीको तुमने जलके लिये याचना की और अर्जुनने बाणके वेगसे गङ्गाजल प्रस्तुत किया, जिससे तुम्हारे तन, मन, प्राण सन्तुष्ट हुए। इसलिये आजसे लेकर पूर्णिमातक तुम्हें सब लोग अर्घ्यदानसे तृप्त करें और मुझको सन्तुष्ट करनेवाले इस भीष्मपञ्चक नामक व्रतका पालन प्रतिवर्ष करते रहें।'

निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर सव्यभावसे महात्मा भीष्मके लिये तर्पण

करना चाहिये। यह भीष्मतर्पण सभी वर्णोंके लोगोंके लिये कर्तव्य है*। मन्त्र इस प्रकार है—

सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने।
भीष्मायैतद् ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे॥

'आजन्म ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले परम पवित्र सत्यव्रतपरायण गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मको मैं यह अर्घ्य देता हूँ।'

जो मनुष्य पुत्रकी कामनासे स्त्रीसहित भीष्मपञ्चकव्रतका पालन करता है, वह वर्षके भीतर ही पुत्र प्राप्त करता है। जो भीष्मपञ्चकव्रतका पालन करता है, उसके द्वारा सब प्रकारके शुभकृत्योंका पालन हो जाता है। यह महापुण्यमय व्रत महापातकोंका नाश करनेवाला है। अतः मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इसमें भीष्मजीके लिये जलदान और अर्घ्यदान विशेष यत्नसे करना चाहिये। जो नीचे लिखे मन्त्रसे भीष्मजीके लिये अर्घ्यदान करता है, वह मोक्षका भागी होता है।

अर्घ्य-मन्त्र

वैयाघ्रपदगोत्राय साङ्कृतप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥

'जिनका व्याघ्रपद गोत्र और साङ्कृत प्रवर है, उन पुत्ररहित भीष्मवर्माको मैं यह जल देता हूँ। वसुओंके अवतार, शन्तनुके पुत्र, आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मको मैं अर्घ्य देता हूँ।'

पञ्चगव्य, सुगन्धित चन्दनके जल, चन्दन, उत्तम गन्ध और कुङ्कुमके द्वारा भक्तिपूर्वक सर्वपापहारी श्रीहरिका पूजन करे। कर्पूर और

* सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम्। (स्क० पु० वै० का० मा० ३२। १०)

खस मिले हुए कुङ्कुमसे भगवान् गरुडध्वजके अङ्गोंमें लेप करे। सुन्दर पुष्प एवं गन्ध, धूप आदिके द्वारा भगवान्की अर्चना करे। पाँच दिनोंतक भगवान्के समीप दिन-रात दीपक जलाता रहे। देवाधिदेव भगवान्के लिये उत्तम-से-उत्तम नैवेद्य निवेदन करे। इस प्रकार भगवान्की पूजा-अर्चा, ध्यान और नमस्कारके पश्चात् **'ॐ नमो वासुदेवाय'** इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। फिर घी मिलाये हुए तिल, चावल और जौ आदिके द्वारा स्वाहाविशिष्ट षडक्षर **(ॐ रामाय नमः)** मन्त्रसे आहुति दे। इसके बाद सायं-सन्ध्या करके भगवान् विष्णुको प्रणाम करे तथा पूर्ववत् मन्त्र जपकर धरतीपर ही शयन करे। भक्तिपूर्वक भगवान्में ही मनको लगावे। व्रतके समय बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पापपूर्ण विचार तथा पापके कारणभूत मैथुनका परित्याग करे। शाकाहार तथा मुनियोंके अन्नसे निर्वाह करते हुए सदा भगवान् विष्णुके पूजनमें तत्पर रहे। रात्रिमें पञ्चगव्य लेकर भोजन करे। इस प्रकार भलीभाँति व्रतको समाप्त करे। ऐसा करनेसे मनुष्य शास्त्रोक्त फलको पाता है। स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञा लेकर पुण्यकी वृद्धि करनी चाहिये। विधवाओंको भी मोक्षसुखकी वृद्धिके लिये व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। पहले अयोध्यापुरीमें कोई अतिथि नामके राजा हो गये हैं। उन्होंने वसिष्ठजीके वचनसे इस परम दुर्लभ व्रतका अनुष्ठान किया था, जिससे इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वे भगवान् विष्णुके परम धाममें गये। इस प्रकार नियम, उपवास और पञ्चगव्यसे तथा दूध, फल, मूल एवं हविष्यके आहारसे निर्वाह करते हुए भीष्मपञ्चकव्रतका पालन करे। पौर्णमासी आनेपर पहलेके समान पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और बछड़ेसहित गौका दान करे। एकादशीसे लेकर पूर्णिमातक पाँच दिनोंका भीष्मपञ्चकव्रत समस्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध है। अन्न भोजन करनेवाले

पुरुषके लिये यह व्रत नहीं कहा गया है, इसमें अन्नका निषेध है। इस व्रतका पालन करनेपर भगवान् विष्णु शुभ फल प्रदान करते हैं।

एकादशीको भगवान्‌के जगानेकी विधि, कार्तिकव्रतका उद्यापन और अन्तिम तीन तिथियोंकी महिमाके साथ ग्रन्थका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—जो पुरुष कार्तिकमासमें प्रतिदिन पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा अथवा पाञ्चरात्र आगममें बतायी हुई विधिके अनुसार भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो कार्तिकमें '**ॐ नमो नारायणाय**'—इस मन्त्रसे श्रीहरिकी आराधना करता है, वह नरकके दुःखोंसे मुक्त हो, रोग-शोकसे रहित वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। कार्तिकमासमें जो मनुष्य विष्णुसहस्रनाम तथा गजेन्द्रमोक्षका पाठ करता है, उसका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। सुव्रत! जो कार्तिकमासमें रात्रिके पिछले पहरमें भगवान्‌की स्तुतिका गान करता है, वह पितरोंसहित श्वेतद्वीपमें निवास करता है। आषाढ़के शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिको शङ्खासुर दैत्य मारा गया है। अतः उसी दिनसे आरम्भ करके भगवान् चार मासतक क्षीरसमुद्रमें शयन करते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशीको जागते हैं। इस कारण वैष्णवोंको एकादशीमें निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌को जगाना चाहिये।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु॥

'हे गोविन्द! उठिये, उठिये, हे गरुड़ध्वज! उठिये, हे कमलाकान्त! निद्राका त्याग कर तीनों लोकोंका मङ्गल कीजिये।'

ऐसा कहकर प्रातःकाल शङ्ख और नगाड़े आदि बजवाये। वीणा,

वेणु और मृदङ्ग आदिकी मधुर ध्वनिके साथ नृत्य-गीत और कीर्तन आदि करे। देवेश्वर श्रीविष्णुको उठाकर उनकी पूजा करे और सायंकालमें तुलसीकी वैवाहिक विधिको सम्पन्न करे। एकादशी सदा ही पवित्र है, विशेषतः कार्तिककी एकादशी परम पुण्यमयी मानी गयी है। उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य वृद्ध माता-पिताका विधिपूर्वक पूजन करके अपनी स्त्रियोंके साथ भगवान् विष्णुके प्रसादको भक्षण करे। जो इस प्रकार विधिसे द्वादशी व्रतका अनुष्ठान करता है, वह मनुष्य उत्तम सुखोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य द्वादशी तिथिके इस परम उत्तम पुण्यमय माहात्म्यका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

अब मैं कार्तिकव्रतके उद्यापनका वर्णन करता हूँ जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीको व्रतकी पूर्ति और भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये उद्यापन करे। तुलसीके ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनवाये। उसे केलेके खम्भोंसे संयुक्त करके नाना प्रकारकी धातुओंसे उसकी विचित्र शोभा बढ़ावे। मण्डपके चारों ओर दीपकोंकी श्रेणी सुन्दर ढंगसे सजाकर रखे। उस मण्डपमें सुन्दर बंदनवारोंसे सुशोभित चार दरवाजे बनावे और उन्हें फूलों तथा चँवरसे सुसज्जित करे। द्वारोंपर पृथक्-पृथक् मिट्टीके द्वारपाल बनाकर उनकी पूजा करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—जय, विजय, चण्ड, प्रचण्ड, नन्द, सुनन्द, कुमुद और कुमुदाक्ष। उन्हें चारों दरवाजोंपर दो-दोके क्रमसे स्थापित कर भक्तिपूर्वक पूजन करे। तुलसीकी जड़के समीप चार रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्रमण्डल बनावे और उसके ऊपर पूर्णपात्र तथा पञ्चरत्नसे संयुक्त कलशकी स्थापना करे। कलशके ऊपर शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका पूजन करे। भक्तिपूर्वक उस तिथिमें उपवास करे तथा रात्रिमें गीत, वाद्य, कीर्तन

आदि मङ्गलमय आयोजनोंके साथ जागरण करे। जो भगवान् विष्णुके लिये जागरण करते समय भक्तिपूर्वक भगवत्सम्बन्धी पदोंका गान करते हैं, वे सैकड़ों जन्मोंकी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद पूर्णमासीमें एक सपत्नीक ब्राह्मणको निमन्त्रित करे। प्रातःकाल स्नान और देवपूजन करके वेदीपर अग्निकी स्थापना करे और **'अतो देव'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा देवाधिदेव भगवान्‌की प्रीतिके लिये तिल और खीरकी आहुति दे। होमकी शेष विधि पूरी करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन करे और उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। भगवान् द्वादशी तिथिको शयनसे उठे, त्रयोदशीको देवताओंसे मिले और चतुर्दशीको सबने उनका दर्शन एवं पूजन किया, इसलिये उस तिथिमें भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। गुरुकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका पूजन करे। इस पूर्णिमाको पुष्करतीर्थकी यात्रा श्रेष्ठ मानी गयी है। नारद! कार्तिक मासमें इस विधिका पालन करना चाहिये। जो इस प्रकार कार्तिकके व्रतका पालन करते हैं, वे धन्य और पूजनीय हैं; उन्हें उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो कार्तिकमें व्रतका पालन करते हैं, उनके शरीरमें स्थित सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो श्रद्धापूर्वक कार्तिकके उद्यापनका माहात्म्य सुनता है या सुनाता है, वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् विष्णुकी पूजामें रात्रिकालव्यापिनी चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये और अरुणोदयके समय भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। सायंकाल काशीके पञ्चगङ्गातीर्थमें स्नान करके भगवान् बिन्दुमाधवकी पूजा करे। पहले विष्णुकाञ्चीमें स्नान करके भगवान् अनन्तसेनकी पूजा करे। फिर रुद्रकाञ्चीमें स्नान करके ओङ्कारेश्वरके अग्नितीर्थमें नहाकर भगवान् नारायणकी, रेतोदकमें स्नान करके केदारेश्वरकी, प्रयागकी यमुनामें नहाकर भगवान् वेणीमाधवकी और फिर गङ्गामें स्नान करके

सङ्गमेश्वरकी पूजा करे। जो ऐसा करता है, उसके सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ अधीन हो जाती हैं।

कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें जो अन्तिम तीन पुण्यमयी तिथियाँ हैं, वे त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा कल्याण करनेवाली मानी गयी हैं। उनकी अति पुष्करिणी संज्ञा है। वे सब पापोंका नाश करनेवाली हैं। जो पूरे कार्तिकमासमें स्नान करता है, वह इन्हीं तीन तिथियोंमें स्नान करके पूर्ण फलका भागी होता है। त्रयोदशीमें समस्त वेद जाकर प्राणियोंको पवित्र करते हैं, चतुर्दशीमें यज्ञ और देवता सब जीवोंको पावन बनाते हैं और पूर्णिमामें भगवान् विष्णुसे अधिष्ठित सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थ ब्रह्मघाती और शराबी आदि सब पापी प्राणियोंको शुद्ध करते हैं। जो गृहस्थ उक्त तीन तिथियोंमें ब्राह्मणकुटुम्बको भोजन कराता है, वह अपने समस्त पितरोंका उद्धार करके परमपदको प्राप्त होता है। जो कार्तिकके अन्तिम तीन दिनोंमें गीतापाठ करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो उक्त तीनों दिन विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, वह जलसे कमलके पत्तोंकी भाँति पापोंसे कभी लिप्त नहीं होता। वैसा करनेवाले कुछ मनुष्य देवता और कुछ सिद्ध होते हैं। कार्तिकमासकी अन्तिम तीन तिथियोंमें सब पुण्योंका उदय होता है। उनमें भी पूर्णिमाका महत्त्व विशेष है। पूर्णिमाको प्रातःकाल उठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त हो समस्त नित्यकर्मोंकी समाप्ति करके भगवान् विष्णुका पूजन करे। बगीचेमें अथवा घरपर भगवद्भक्त पुरुष कार्तिक-पूर्णिमाके दिन मण्डप बनावे। उसे केलेके खम्भोंसे सुशोभित करे। उसमें आमके पल्लवोंकी बंदनवार लगावे और ऊखके डंडे खड़े करके उस मण्डपको सजावे। विचित्र वस्त्रोंसे मण्डपको अलङ्कृत करके उसमें भगवान् विष्णुकी पूजा करे। पवित्र, चतुर, शान्त, ईर्ष्यारहित, साधु, दयालु, उत्तम वक्ता और श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुराणज्ञ विद्वान् वहाँ बैठकर

पवित्र कथा कहे। पौराणिक विद्वान् जब व्यासासनपर बैठ जाय, तबसे लेकर उस प्रसङ्गकी समाप्ति होनेतक किसीको नमस्कार न करे। जहाँ दुष्ट मनुष्य भरे हुए हों, जो शूद्र और हिंसक प्राणियोंसे घिरा हुआ हो अथवा जहाँ जुएका अड्डा हो—ऐसे स्थानमें बुद्धिमान् पुरुष पुण्यकथा न कहे। जो शुद्ध और भक्तिसे संयुक्त, अन्य कार्योंकी अभिलाषा न रखनेवाले, मौन, पवित्र एवं चतुर हों, वे ही श्रोता पुण्यके भागी होते हैं। जो मनुष्य बिना भक्तिके तथा अधम भाव लेकर पवित्र कथाको सुनते हैं, उनको पुण्यफल नहीं प्राप्त होता। मासके अन्तमें गन्ध-माल्य-वस्त्र-आभूषण तथा धनके द्वारा भक्तिपूर्वक पौराणिक विद्वान्का पूजन करे। जो मनुष्य कल्याणमयी पुराणकथाको सुनाते हैं, वे सौ कोटि कल्पोंसे अधिक कालतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। जो पौराणिक विद्वान्के बैठनेके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी अथवा पलंग देते हैं, जो पहननेके लिये कपड़े देते हैं, वे ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। यह कार्तिक-माहात्म्य सब रोगों और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य इस माहात्म्यको भक्तिपूर्वक पढ़ता और जो सुनकर धारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जिसकी बुद्धि खोटी हो तथा जो श्रद्धासे हीन हो, ऐसे किसी भी मनुष्यको यह माहात्म्य नहीं सुनाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीके मुखसे इस प्रकार कार्तिक-माहात्म्यकी कथा सुनकर नारदजी प्रेममें मग्न हो गये। उन्होंने ब्रह्माजीको बारम्बार प्रणाम किया और स्वेच्छानुसार वहाँसे चले गये।

स्कन्दपुराणान्तर्गत कार्तिकमास-माहात्म्य सम्पूर्ण

कार्तिक-व्रतका माहात्म्य—गुणवतीको कार्तिक-व्रतके पुण्यसे भगवान्‌की प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—एक समयकी बात है, देवर्षि नारद कल्पवृक्षके दिव्य पुष्प लेकर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। श्रीकृष्णने स्वागतपूर्वक नारदजीका सत्कार करते हुए उन्हें पाद्य-अर्घ्य निवेदन करनेके पश्चात् बैठनेको आसन दिया। नारदजीने वे दिव्य पुष्प भगवान्‌को भेंट कर दिये। भगवान्‌ने अपनी सोलह हजार रानियोंमें उन फूलोंको बाँट दिया।

तदनन्तर एक दिन सत्यभामाने पूछा—'प्राणनाथ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा दान, तप अथवा व्रत किया था, जिससे मैं मर्त्यलोकमें जन्म लेकर भी मर्त्यभावसे ऊपर उठ गयी, आपकी अर्द्धाङ्गिनी हुई।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! एकाग्रचित्त होकर सुनो—तुम पूर्वजन्ममें जो कुछ थीं और जिस पुण्यकारक व्रतका तुमने अनुष्ठान किया था, वह सब मैं बताता हूँ। सत्ययुगके अन्तमें मायापुरी (हरद्वार)-के भीतर अत्रिकुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण रहते थे, जो देवशर्मा नामसे प्रसिद्ध थे। वे वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान्, अतिथिसेवी, अग्निहोत्रपरायण और सूर्यव्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे। प्रतिदिन सूर्यकी आराधना करनेके कारण वे साक्षात् दूसरे सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ते थे। उनकी अवस्था अधिक हो चली थी। ब्राह्मणके कोई पुत्र नहीं था; केवल एक पुत्री थी, जिसका नाम गुणवती था। उन्होंने अपने चन्द्र नामक शिष्यके साथ उसका विवाह कर दिया। वे उस शिष्यको ही पुत्रकी भाँति मानते थे और वह जितेन्द्रिय शिष्य भी उन्हें पिताके ही तुल्य समझता था। एक दिन वे दोनों गुरु-शिष्य कुश और समिधा लानेके लिये गये और हिमालयके शाखाभूत पर्वतके

वनमें इधर-उधर भ्रमण करने लगे; इतनेमें ही उन्होंने एक भयङ्कर राक्षसको अपनी ओर आते देखा। उनके सारे अङ्ग भयसे काँपने लगे। वे भागनेमें भी असमर्थ हो गये। तबतक उस कालरूपी राक्षसने उन दोनोंको मार डाला। उस क्षेत्रके प्रभावसे तथा स्वयं धर्मात्मा होनेके कारण उन दोनोंको मेरे पार्षदोंने वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। उन्होंने जो जीवनभर सूर्यपूजन आदि किया था, उस कर्मसे मैं उनके ऊपर बहुत संतुष्ट था। सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु तथा शक्तिके उपासक भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षाका जल सब ओरसे समुद्रमें ही जाता है, उसी प्रकार इन पाँचोंके उपासक मेरे ही पास आते हैं। मैं एक ही हूँ तथापि लीलाके अनुसार भिन्न-भिन्न नाम धारण करके पाँच रूपोंमें प्रकट हुआ हूँ। ठीक उसी तरह, जैसे कोई देवदत्त नामक एक ही व्यक्ति पुत्र-पिता आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है।*

तदनन्तर गुणवतीने जब राक्षसके हाथसे उन दोनोंके मारे जानेका हाल सुना, तब वह पिता और पतिके वियोग-दुःखसे पीड़ित होकर करुणस्वरमें विलाप करने लगी—'हा नाथ! हा तात! आप दोनों मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले गये? मैं अनाथ बालिका आपके बिना अब क्या करूँगी। अब कौन घरमें बैठी हुई मुझ कुशलहीन दुःखिनी स्त्रीका भोजन और वस्त्र आदिके द्वारा पालन करेगा।' इस प्रकार बारम्बार करुणाजनक विलाप करके वह बहुत देरके बाद चुप हुई। गुणवती शुभकर्म करनेवाली थी। उसने घरका सारा सामान बेंचकर अपनी शक्तिके अनुसार पिता और पतिका पारलौकिक कर्म किया। तत्पश्चात् वह उसी नगरमें निवास करने लगी। शान्तभावसे

* सौराश्च शैवा गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः। मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल। देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः॥
(९०। ६३-६४)

सत्य-शौच आदिके पालनमें तत्पर हो भगवान् विष्णुके भजनमें समय बिताने लगी। उसने अपने जीवनभर दो व्रतोंका विधिपूर्वक पालन किया—एक तो एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिकमासका भलीभाँति सेवन। प्रिये! ये दो व्रत मुझे बहुत ही प्रिय हैं। ये पुण्य उत्पन्न करनेवाले, पुत्र और सम्पत्तिके दाता तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो कार्तिकके महीनेमें सूर्यके तुला राशिपर रहते समय प्रातःकाल स्नान करते हैं, वे महापातकी होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकमें स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसीवनका पालन करते हैं, वे साक्षात् भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। जो लोग श्रीविष्णुमन्दिरमें झाड़ू देते, स्वस्तिक आदि निवेदन करते और श्रीविष्णुकी पूजा करते रहते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। जो कार्तिकमें तीन दिन भी इस नियमका पालन करते हैं, वे देवताओंके लिये वन्दनीय हो जाते हैं। फिर जिन लोगोंने आजन्म इस कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है उनके लिये तो कहना ही क्या है।

इस प्रकार गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिकका व्रत किया करती थी। वह श्रीविष्णुकी परिचर्यामें नित्य-निरन्तर भक्तिपूर्वक मन लगाये रहती थी। एक समय, जब कि जरावस्थासे उसके सारे अङ्ग दुर्बल हो गये थे और वह स्वयं भी ज्वरसे पीड़ित थी, किसी तरह धीरे-धीरे चलकर गङ्गाके तटपर स्नान करनेके लिये गयी। ज्यों ही उसने जलके भीतर पैर रखा, त्यों ही वह शीतसे पीड़ित हो काँपती हुई गिर पड़ी। उस घबराहटकी दशामें ही उसने देखा, आकाशसे विमान उतर रहा है, जो शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले श्रीविष्णुरूपधारी पार्षदोंसे सुशोभित है और उसमें गरुड़चिह्नसे अङ्कित ध्वजा फहरा रही है। विमानके निकट आनेपर वह दिव्यरूप धारण करके उसपर बैठ गयी। उसके लिये चँवर डुलाया जाने लगा। मेरे

पार्षद उसे वैकुण्ठ ले चले। विमानपर बैठी हुई गुणवती प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजस्विनी जान पड़ती थी, कार्तिकव्रतके पुण्यसे उसे मेरे निकट स्थान मिला।

तदनन्तर जब मैं ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे इस पृथ्वीपर आया, तब मेरे पार्षदगण भी मेरे साथ ही आये। भामिनि! समस्त यादव मेरे पार्षदगण ही हैं। ये मेरे समान गुणोंसे शोभा पानेवाले और मेरे प्रियतम हैं। जो तुम्हारे पिता देवशर्मा थे, वे ही अब सत्राजित् हुए हैं। शुभे! चन्द्रशर्मा ही अक्रूर हैं और तुम गुणवती हो। कार्तिकव्रतके पुण्यसे तुमने मेरी प्रसन्नताको बहुत बढ़ाया है। पूर्वजन्ममें तुमने मेरे मन्दिरके द्वारपर जो तुलसीकी वाटिका लगा रखी थी, इसीसे तुम्हारे आँगनमें कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। पूर्वकालमें तुमने जो कार्तिकमें दीपदान किया था, उसीके प्रभावसे तुम्हारे घरमें यह स्थिर लक्ष्मी प्राप्त हुई है तथा तुमने जो अपने व्रत आदि सब कर्मोंको पतिस्वरूप श्रीविष्णुकी सेवामें निवेदन किया था, इसीलिये तुम मेरी पत्नी हुई हो। मृत्युपर्यन्त जो कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके प्रभावसे तुम्हारा मुझसे कभी भी वियोग नहीं होगा। इस प्रकार जो मनुष्य कार्तिकमासमें व्रतपरायण होते हैं, वे मेरे समीप आते हैं, जिस प्रकार कि तुम मुझे प्रसन्नता देती हुई यहाँ आयी हो। केवल यज्ञ, दान, तप और व्रत करनेवाले मनुष्य कार्तिकव्रतके पुण्यकी एक कला भी नहीं पा सकते।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार जगत्के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे अपने पूर्वजन्मके पुण्यमय वैभवकी बात सुनकर उस समय महारानी सत्यभामाको बड़ा हर्ष हुआ।

कार्तिककी श्रेष्ठताके प्रसङ्गमें शङ्खासुरके वध, वेदोंके उद्धार तथा 'तीर्थराज' के उत्कर्षकी कथा

सत्यभामाने पूछा—देवदेवेश्वर! तिथियोंमें एकादशी और महीनोंमें कार्तिकमास आपको विशेष प्रिय क्यों हैं? इसका कारण बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सत्ये! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। एकाग्रचित्त होकर सुनो। प्रिये! पूर्वकालमें राजा पृथुने भी देवर्षि नारदसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उस समय सर्वज्ञ मुनिने उन्हें कार्तिकमासकी श्रेष्ठताका कारण बताया था।

नारदजी बोले—पूर्वकालमें शङ्ख नामक एक असुर था, जो त्रिलोकीका नाश करनेमें समर्थ तथा महान् बल एवं पराक्रमसे युक्त था। वह समुद्रका पुत्र था। उस महान् असुरने समस्त देवताओंको परास्त करके स्वर्गसे बाहर कर दिया और इन्द्र आदि लोकपालोंके अधिकार छीन लिये। देवता मेरुगिरिकी दुर्गम कन्दराओंमें छिपकर रहने लगे। शत्रुके अधीन नहीं हुए। तब दैत्यने सोचा कि 'देवता वेदमन्त्रोंके बलसे प्रबल प्रतीत होते हैं। यह बात मेरी समझमें आ गयी है, अतः मैं वेदोंका ही अपहरण करूँगा। इससे समस्त देवता निर्बल हो जायँगे।' ऐसा निश्चय करके वह वेदोंको हर ले आया। इधर ब्रह्माजी पूजाकी सामग्री लेकर देवताओंके साथ वैकुण्ठलोकमें जा भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। उन्होंने भगवान्को जगानेके लिये गीत गाये और बाजे बजाये। तब भगवान् विष्णु उनकी भक्तिसे सन्तुष्ट हो जाग उठे। देवताओंने उनका दर्शन किया। वे सहस्रों सूर्योंके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे। उस समय षोडशोपचारसे भगवान्की पूजा करके देवता उनके चरणोंमें पड़ गये। तब भगवान् लक्ष्मीपतिने उनसे इस प्रकार कहा।

श्रीविष्णु बोले—देवताओ! तुम्हारे गीत, वाद्य आदि मङ्गलमय कार्योंसे सन्तुष्ट हो मैं वर देनेको उद्यत हूँ। तुम्हारी सभी मनोवाञ्छित कामनाओंको पूर्ण करूँगा। कार्तिकके शुक्लपक्षमें 'प्रबोधिनी' एकादशीके दिन जब एक पहर रात बाकी रहे, उस समय गीत-वाद्य आदि मङ्गलमय विधानोंके द्वारा जो लोग तुम्हारे ही समान मेरी आराधना करेंगे, वे मुझे प्रसन्न करनेके कारण मेरे समीप आ जायँगे। शङ्खासुरके द्वारा हरे गये सम्पूर्ण वेद जलमें स्थित हैं। मैं सागरपुत्र शङ्खका वध करके उन्हें ले आऊँगा। आजसे लेकर सदा ही प्रतिवर्ष कार्तिकमासमें मन्त्र, बीज और यज्ञोंसे युक्त वेद जलमें विश्राम करेंगे। आजसे मैं भी इस महीनेमें जलके भीतर निवास करूँगा। तुम लोग भी मुनीश्वरोंको साथ लेकर मेरे साथ आओ। इस समय जो श्रेष्ठ द्विज प्रातःस्नान करते हैं, वे निश्चय ही सम्पूर्ण यज्ञोंका अवभृथस्नान कर चुके। जिन्होंने जीवनभर शास्त्रोक्त विधिसे कार्तिकके उत्तम व्रतका पालन किया हो, वे तुम लोगोंके भी माननीय हों। तुमने एकादशीको मुझे जगाया है; इसलिये यह तिथि मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी और माननीय होगी। कार्तिकमास और एकादशी तिथि—इन दो व्रतोंका यदि मनुष्य अनुष्ठान करें तो ये मेरे सांनिध्यकी प्राप्ति करानेवाले हैं। इनके समान दूसरा कोई साधन नहीं है।

नारदजी कहते हैं—यह कहकर भगवान् विष्णु मछलीके समान रूप धारण करके आकाशमें विन्ध्यपर्वत-निवासी कश्यप मुनिकी अञ्जलिमें गिरे। मुनिने करुणावश उस मत्स्यको अपने कमण्डलुमें रख लिया; किन्तु वह उसमें अँट न सका। तब उन्होंने उसे कुएँमें ले जाकर डाल दिया। जब उसमें भी वह न आ सका, तब मुनिने उसे तालाबमें पहुँचा दिया; किन्तु वहाँ भी यही दशा हुई। इस प्रकार उसे अनेक स्थानोंमें रखते हुए अन्ततोगत्वा उन्होंने समुद्रमें डाल दिया।

वहाँ भी बढ़कर वह विशालकाय हो गया। तदनन्तर उन मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुने शङ्खासुरका वध किया और उस शङ्खको अपने हाथमें लिये वे बदरीवनमें गये। वहाँ सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाकर भगवान्ने इस प्रकार आदेश दिया।

श्रीविष्णु बोले—महर्षियो! जलके भीतर बिखरे हुए वेदोंकी खोज करो और रहस्योंसहित उनका पता लगाकर शीघ्र ही ले आओ। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरता हूँ।

तब तेज और बलसे सम्पन्न समस्त मुनियोंने यज्ञ और बीजसहित वेदमन्त्रोंका उद्धार किया। जिस वेदके जितने मन्त्रको जिस ऋषिने उपलब्ध किया, वही उतने भागका तबसे ऋषि माना जाने लगा। तदनन्तर सब मुनि एकत्रित होकर प्रयागमें गये तथा ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णुको उन्होंने प्राप्त किये हुए वेद अर्पण कर दिये। यज्ञसहित वेदोंको पाकर ब्रह्माजीको बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने देवताओं और ऋषियोंके साथ प्रयागमें अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञकी समाप्ति होनेपर देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा गुह्यकोंने पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम करके यह प्रार्थना की।

देवता बोले—देवाधिदेव जगन्नाथ! प्रभो!! हमारा निवेदन सुनिये। हम लोगोंके लिये यह बड़े हर्षका समय है, अतः आप हमें वरदान दें। रमापते! इस स्थानपर ब्रह्माजीको खोये हुए वेदोंकी प्राप्ति हुई है तथा आपकी कृपासे हमें भी यज्ञभाग उपलब्ध हुआ है; अतः यह स्थान पृथ्वीपर सबसे अधिक श्रेष्ठ और पुण्यवर्धक हो। इतना ही नहीं, आपके प्रसादसे यह भोग और मोक्षका भी दाता हो। साथ ही यह समय भी महान् पुण्यदायक और ब्रह्महत्यारे आदिकी भी शुद्धि करनेवाला हो। इसमें दिया हुआ सब कुछ अक्षय हो। यही वर हमें दीजिये।

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें मेरी भी सम्मति है; अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, यह स्थान आजसे 'ब्रह्मक्षेत्र' नाम धारण करे। सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गङ्गाको ले आयेंगे और वह सूर्यकन्या यमुनाजीके साथ यहाँ मिलेगी। ब्रह्माजीसहित तुम सम्पूर्ण देवता भी मेरे साथ यहाँ निवास करो। आजसे यह तीर्थ 'तीर्थराज' के नामसे विख्यात होगा। यहाँ किये हुए दान, व्रत, तप, होम, जप और पूजा आदि कर्म अक्षय फलके दाता और सदा मेरी समीपताकी प्राप्ति करानेवाले हों। सात जन्मोंमें किये हुए ब्रह्महत्या आदि पाप भी इस तीर्थका दर्शन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ। जो धीर पुरुष इस तीर्थमें मेरे समीप मृत्युको प्राप्त होंगे, वे मुझमें ही प्रवेश कर जायँगे, उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। जो यहाँ मेरे आगे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करेंगे, उनके समस्त पितर मेरे लोकमें चले जायँगे। यह काल भी मनुष्योंके लिये महान् पुण्यमय तथा उत्तम फल प्रदान करनेवाला होगा। सूर्यके मकर राशिपर स्थित रहते हुए जो लोग यहाँ प्रातःकाल स्नान करेंगे, उनके लिये यह स्थान पापनाशक होगा। मकर राशिपर सूर्यके रहते समय माघमें प्रातःस्नान करनेवाले मनुष्योंके दर्शनमात्रसे सारे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदयसे अन्धकार। माघमें जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, उस समय यहाँ प्रातःस्नान करनेपर मैं मनुष्योंको क्रमशः सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य—तीनों प्रकारकी मुक्ति दूँगा। मुनीश्वरो! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। यद्यपि मैं सर्वत्र व्यापक हूँ तो भी बदरीवनमें सदा विशेषरूपसे निवास करता हूँ; अन्यत्र दस वर्षोंतक तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही वहाँ एक दिनकी तपस्यासे तुम लोग प्राप्त कर सकते हो। जो नरश्रेष्ठ उस स्थानका दर्शन करते हैं, वे सदाके लिये जीवन्मुक्त हैं। उनके शरीरमें पाप नहीं रहता।

नारदजी कहते हैं—देवदेव भगवान् विष्णु देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये तथा इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भी अपने अंशोंसे वहाँ रहकर स्वरूपसे अन्तर्धान हो गये। जो शुद्ध चित्तवाला श्रेष्ठ पुरुष इस कथाको सुनता या सुनाता है, वह तीर्थराज प्रयाग और बदरीवनकी यात्रा करनेका फल प्राप्त कर लेता है।

कार्तिकमासमें स्नान और पूजनकी विधि

राजा पृथुने कहा—मुने! आपने कार्तिक और माघके स्नानका महान् फल बतलाया; अब उनमें किये जानेवाले स्नानकी विधि और नियमोंका भी वर्णन कीजिये, साथ ही उनकी उद्यापन-विधिको भी ठीक-ठीक बताइये।

नारदजी बोले—राजन्! तुम भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हो, तुम्हारे लिये कोई बात अज्ञात नहीं है। तथापि तुम पूछते हो, इसलिये मैं कार्तिकके परम उत्तम माहात्म्यका वर्णन करता हूँ; सुनो। आश्विनमासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी आती है, उसी दिन आलस्य छोड़कर कार्तिकके उत्तम व्रतोंका नियम ग्रहण करे। व्रत करनेवाला पुरुष पहरभर रात बाकी रहे तभी उठे और जलसहित लोटा लेकर गाँवसे बाहर नैर्ऋत्यकोणकी ओर जाय। दिन और सन्ध्याके समय उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके तथा रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे। पहले जनेऊको दाहिने कानपर चढ़ा ले और भूमिको तिनकेसे ढककर अपने मस्तकको वस्त्रसे आच्छादित कर ले। शौचके समय मुखको यत्नपूर्वक मूँदे रखे। न तो थूके और न मुँहसे ऊपरको साँस ही खींचें। मलत्यागके पश्चात्

गुदाभाग तथा हाथको इस प्रकार धोये जिससे मलका लेप और दुर्गन्ध दूर हो जाय। इस कार्यमें आलस्य नहीं करना चाहिये। पाँच बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें तथा सात-सात बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोये। फिर एक बार लिङ्गमें, तीन बार बायें हाथमें और दो-दो बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोये। यह गृहस्थके लिये शौचकी विधि बतायी गयी। ब्रह्मचारीके लिये इससे दूना, वानप्रस्थके लिये तिगुना और संन्यासीके लिये चौगुना करनेका विधान है। रातको दिनकी अपेक्षा आधे शौच (मिट्टी लगाकर धोने)-का नियम है। रास्ता चलनेवाले व्यक्तिके लिये, स्त्रीके लिये तथा शूद्रोंके लिये उससे भी आधे शौचका विधान है। शौचकर्मसे हीन पुरुषकी समस्त क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जो अपने मुँहको अच्छी तरह साफ नहीं रखता, उसके उच्चारण किये हुए मन्त्र फलदायक नहीं होते; इसलिये प्रयत्नपूर्वक दाँत और जीभकी शुद्धि करनी चाहिये। गृहस्थ पुरुष किसी दूधवाले वृक्षकी बारह अंगुलकी लकड़ी लेकर दाँतुन करे; किन्तु यदि घरमें पिताकी क्षयाह तिथि या व्रत हो तो दाँतुन न करे। दाँतुन करनेके पहले वनस्पति-देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

(९४। ११)

'हे वनस्पते! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, संतति, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और स्मरणशक्ति प्रदान करें।'

इस मन्त्रका उच्चारण करके दाँतुनसे दाँत साफ करना चाहिये। प्रतिपदा, अमावास्या, नवमी, षष्ठी, रविवार तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके दिन दाँतुन नहीं करना चाहिये। व्रत और श्राद्धके दिन भी लकड़ीकी दाँतुन करना मना है, उन दिनों जलके बारह कुल्ले करके

मुख शुद्ध करनेका विधान है। काँटेदार वृक्ष, कपास, सिन्धुवार, ब्रह्मवृक्ष (पलाश), बरगद, एरण्ड (रेंड़) और दुर्गन्धयुक्त वृक्षोंकी लकड़ीको दाँतुनके काममें नहीं लेना चाहिये। फिर स्नान करनेके पश्चात् भक्तिपरायण एवं प्रसन्नचित्त होकर चन्दन, फूल और ताम्बूल आदि पूजाकी सामग्री ले भगवान् विष्णु अथवा शिवके मन्दिरमें जाय। वहाँ भगवान्को पृथक्-पृथक् पाद्य-अर्घ्य आदि उपचार अर्पण करके स्तुति करे तथा पुनः नमस्कार करके गीत आदि माङ्गलिक उत्सवका प्रबन्ध करे। ताल, वेणु और मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ भगवान्के सामने नृत्य और गान करनेवाले लोगोंका भी ताम्बूल आदिके द्वारा सत्कार करे। जो भगवान्के मन्दिरमें गान करते हैं, वे साक्षात् विष्णुरूप हैं। कलियुगमें किये हुए यज्ञ, दान और तप भक्तिसे युक्त होनेपर ही जगद्गुरु भगवान्को संतोष देनेवाले होते हैं। राजन्! एक बार मैंने भगवान्से पूछा—'देवेश्वर! आप कहाँ निवास करते हैं?' तो वे मेरी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर बोले—'नारद! न तो मैं वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें। मेरे भक्त जहाँ मेरा गुण-गान करते हैं वहीं मैं भी रहता हूँ।'* यदि मनुष्य गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा मेरे भक्तोंका पूजन करते हैं तो उससे मुझे जितनी अधिक प्रसन्नता होती है उतनी स्वयं मेरी पूजा करनेसे भी नहीं होती। जो मूर्ख मानव मेरी पुराण-कथा और मेरे भक्तोंका गान सुनकर निन्दा करते हैं, वे मेरे द्वेषके पात्र होते हैं।

शिरीष (सिरस), उन्मत्त (धतूरा), गिरिजा (मातुलुङ्गी), मल्लिका (मालती), सेमल, मदार और कनेरके फूलोंसे तथा अक्षतोंके द्वारा श्रीविष्णुकी पूजा नहीं करनी चाहिये। जवा, कुन्द, सिरस, जूही,

* नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(९४। २३)

मालती और केवड़ेके फूलोंसे श्रीशङ्करजीका पूजन नहीं करना चाहिये। लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष तुलसीदलसे गणेशका, दूर्वादलसे दुर्गाका तथा अगस्त्यके फूलोंसे सूर्यदेवका पूजन न करे।* इनके अतिरिक्त जो उत्तम पुष्प हैं, वे सदा सब देवताओंकी पूजाके लिये प्रशस्त माने गये हैं। इस प्रकार पूजा-विधि पूर्ण करके देवदेव भगवान्से क्षमा-प्रार्थना करे—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

(९४। ३०)

'देवेश्वर! देव! मेरे द्वारा किये गये आपके पूजनमें जो मन्त्र, विधि तथा भक्तिकी न्यूनता हुई हो, वह सब आपकी कृपासे पूर्ण हो जाय।'

तदनन्तर प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करे तथा पुनः भगवान्से त्रुटियोंके लिये क्षमा-याचना करते हुए गायन आदि समाप्त करे। जो इस कार्तिककी रात्रिमें भगवान् विष्णु अथवा शिवकी भलीभाँति पूजा करते हैं वे मनुष्य पापहीन हो अपने पूर्वजोंके साथ श्रीविष्णुके धाममें जाते हैं।

नारदजी कहते हैं—जब दो घड़ी रात बाकी रहे तब तिल, कुश, अक्षत, फूल और चन्दन आदि लेकर पवित्रतापूर्वक जलाशयके तटपर जाय। मनुष्योंका खुदवाया हुआ पोखरा हो अथवा कोई देवकुण्ड हो या नदी अथवा उसका संगम हो—इनमें उत्तरोत्तर दसगुने पुण्यकी

---

* शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः। अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाक्षतैः॥
जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः। केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा॥
गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव तु दूर्वया। मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत्॥
(९४। २६—२८)

प्राप्ति होती है तथा यदि तीर्थमें स्नान करे तो उसका अनन्त फल माना गया है। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुका स्मरण करके स्नानका संकल्प करे तथा तीर्थ आदिके देवताओंको क्रमश: अर्घ्य आदि निवेदन करे। फिर भगवान् विष्णुको अर्घ्य देते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे—

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

× × ×

कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह॥
ध्यात्वाऽहं त्वां च देवेश जलेऽस्मिन् स्नातुमुद्यतः।
तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु॥

(९५। ४, ७, ८)

'भगवान् पद्मनाभको नमस्कार है। जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणको नमस्कार है। हृषीकेश! आपको बारम्बार नमस्कार है। यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये। जनार्दन! देवेश! लक्ष्मीसहित दामोदर! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये कार्तिकमें प्रात:स्नान करूँगा। देवेश्वर! आपका ध्यान करके मैं इस जलमें स्नान करनेको उद्यत हूँ। दामोदर! आपकी कृपासे मेरा पाप नष्ट हो जाय।'

तत्पश्चात् राधासहित भगवान् श्रीकृष्णको निम्नाङ्कित मन्त्रसे अर्घ्य दे—

नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्त्तिके पापनाशने।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे॥

(९५। ९)

'श्रीराधासहित भगवान् श्रीकृष्ण! नित्य और नैमित्तिक कर्मरूप इस पापनाशक कार्त्तिकस्नानके व्रतके निमित्त मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार करें।'

इसके बाद व्रत करनेवाला पुरुष भागीरथी, श्रीविष्णु, शिव और सूर्यका स्मरण करके नाभिके बराबर जलमें खड़ा हो विधिपूर्वक स्नान करे। गृहस्थ पुरुषको तिल और आँवलेका चूर्ण लगाकर स्नान करना चाहिये। वनवासी संन्यासी तुलसीके मूलकी मिट्टी लगाकर स्नान करे। सप्तमी, अमावास्या, नवमी, द्वितीया, दशमी और त्रयोदशीको आँवलेके फल और तिलके द्वारा स्नान करना निषिद्ध है। पहले मल-स्नान करे अर्थात् शरीरको खूब मल-मलकर उसकी मैल छुड़ाये। उसके बाद मन्त्रस्नान करे। स्त्री और शूद्रोंको वेदोक्त मन्त्रोंसे स्नान नहीं करना चाहिये। उनके लिये पौराणिक मन्त्रोंका उपयोग बताया गया है।

व्रती पुरुष अपने हाथमें पवित्रक धारण करके निम्नाङ्कित मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए स्नान करे—

त्रिधाभूद्देवकार्यार्थं यः पुरा भक्तिभावितः।
स विष्णुः सर्वपापघ्नः पुनातु कृपयात्र माम्॥
विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्तिकव्रतकारणात्।
क्षमन्तु देवास्ते सर्वे मां पुनन्तु सवासवाः॥
वेदमन्त्राः सबीजाश्च सरहस्या मखान्विताः।
कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदैव ते॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः।
ससप्तसागराः सर्वे मां पुनन्तु सदैव ते॥
पतिव्रतास्त्वदित्याद्या यक्षाः सिद्धाः सपन्नगाः।
ओषध्यः पर्वताश्चापि मां पुनन्तु त्रिलोकजाः॥

(९५। १४—१८)

'जो पूर्वकालमें भक्तिपूर्वक चिन्तन करनेपर देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये तीन स्वरूपोंमें प्रकट हुए तथा जो समस्त पापोंका

नाश करनेवाले हैं, वे भगवान् विष्णु यहाँ कृपापूर्वक मुझे पवित्र करें। श्रीविष्णुकी आज्ञा प्राप्त करके कार्त्तिकका व्रत करनेके कारण यदि मुझसे कोई त्रुटि हो जाय तो उसके लिये समस्त देवता मुझे क्षमा करें तथा इन्द्र आदि देवता मुझे पवित्र करें। बीज, रहस्य और यज्ञोंसहित वेदमन्त्र और कश्यप आदि मुनि मुझे सदा ही पवित्र करें। गङ्गा आदि सम्पूर्ण नदियाँ, तीर्थ, मेघ, नद और सात समुद्र—ये सभी मुझे सर्वदा पवित्र करें। अदिति आदि पतिव्रताएँ, यक्ष, सिद्ध, नाग तथा त्रिभुवनकी ओषधि और पर्वत भी मुझे पवित्र करें।'

स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य (सनकादि) तथा पितरोंका तर्पण करे। कार्तिकमासमें पितृ-तर्पणके समय जितने तिलोंका उपयोग किया जाता है उतने ही वर्षोंतक पितर स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। तदनन्तर जलसे बाहर निकलकर व्रती मनुष्य पवित्र वस्त्र धारण करे और प्रातःकालोचित नित्यकर्म पूरा करके श्रीहरिका पूजन करे। फिर भक्तिसे भगवान्में मन लगाकर तीर्थों और देवताओंका स्मरण करते हुए पुनः गन्ध, पुष्प और फलसे युक्त अर्घ्य निवेदन करे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे॥

(९५। २३)

'भगवन्! मैं कार्तिकमासमें स्नानका व्रत लेकर विधिपूर्वक स्नान कर चुका हूँ। मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको आप श्रीराधिकाजीके साथ स्वीकार करें।'

इसके बाद वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मणोंका गन्ध, पुष्प और ताम्बूलके द्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करे और बारम्बार उनके चरणोंमें

मस्तक झुकावे। ब्राह्मणके दाहिने पैरमें सम्पूर्ण तीर्थ, मुखमें वेद और समस्त अङ्गोंमें देवता निवास करते हैं; अतः ब्राह्मणके पूजन करनेसे इन सबकी पूजा हो जाती है। इसके पश्चात् हरिप्रिया भगवती तुलसीकी पूजा करे। प्रयागमें स्नान करने, काशीमें मृत्यु होने और वेदोंके स्वाध्याय करनेसे जो फल प्राप्त होता है; वह सब श्रीतुलसीके पूजनसे मिल जाता है, अतः एकाग्रचित्त होकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे तुलसीकी प्रदक्षिणा और नमस्कार करे—

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चिताऽसि मुनीश्वरैः।
नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये॥

(९५। ३०)

'हरिप्रिया तुलसीदेवी! पूर्वकालमें देवताओंने तुम्हें उत्पन्न किया और मुनीश्वरोंने तुम्हारी पूजा की। तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। मेरे सारे पाप हर लो।'

तुलसी-पूजनके पश्चात् व्रत करनेवाला भक्तिमान् पुरुष चित्तको एकाग्र करके भगवान् विष्णुकी पौराणिक कथा सुने तथा कथावाचक विद्वान् ब्राह्मण अथवा मुनिकी पूजा करे। जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर पूर्वोक्त सम्पूर्ण विधियोंका भलीभाँति पालन करता है, वह अन्तमें भगवान् नारायणके परमधाममें जाता है।

कार्तिक-व्रतके नियम और उद्यापनकी विधि

नारदजी कहते हैं—राजन्! कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम बताये गये हैं, उनका मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर सुनो। अन्नदान देना, गौओंको ग्रास अर्पण करना, वैष्णव पुरुषोंके साथ वार्तालाप करना तथा दूसरेके दीपकको जलाना या

उकसाना—इन सब कार्योंसे मनीषी पुरुष धर्मकी प्राप्ति बतलाते हैं। बुद्धिमान् पुरुष दूसरेके अन्न, दूसरेकी शय्या, दूसरेकी निन्दा और दूसरेकी स्त्रीका सदा ही परित्याग करे तथा कार्तिकमें तो इन्हें त्यागनेकी विशेषरूपसे चेष्टा करे। उड़द, मधु, सौवीरक तथा राजमाष (किराव) आदि अन्न कार्तिकका व्रत करनेवाले मनुष्यको नहीं खाने चाहिये। दाल, तिलका तेल, भाव-दूषित तथा शब्द-दूषित अन्नका भी व्रती मनुष्य परित्याग करे। कार्तिकका व्रत करनेवाला पुरुष देवता, वेद, द्विज, गुरु, गौ, व्रती, स्त्री, राजा तथा महापुरुषोंकी निन्दा छोड़ दे। बकरी, गाय और भैंसके दूधको छोड़कर अन्य सभी पशुओंका दूध मांसके समान वर्जित है। ब्राह्मणोंके खरीदे हुए सभी प्रकारके रस, ताँबेके पात्रमें रखा हुआ गायका दूध, दही और घी, गढ़ेका पानी और केवल अपने लिये बनाया हुआ भोजन—इन सबको विद्वान् पुरुषोंने आमिषके तुल्य माना है। व्रती मनुष्योंको सदा ही ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिपर शयन, पत्तलमें भोजन और दिनके चौथे पहरमें एक बार अन्न ग्रहण करना चाहिये। कार्तिकका व्रत करनेवाला मानव प्याज, लहसुन, हींग, छत्राक (गोबर-छत्ता), गाजर, नालिक (भसींड़), मूली और साग खाना छोड़ दे। लौकी, भाँटा (बैगन), कोंहड़ा, भतुआ, लसोड़ा और कैथ भी त्याग दे। व्रती पुरुष रजस्वलाका स्पर्श न करे; म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, ब्राह्मणद्रोही तथा वेदके अनधिकारी पुरुषोंसे कभी वार्तालाप न करे। इन लोगोंने जिस अन्नको देख लिया हो, उस अन्नको भी न खाय; कौओंका जूठा किया हुआ, सूतकयुक्त घरका बना हुआ, दो बार पकाया तथा जला हुआ अन्न भी वैष्णवव्रतका पालन करनेवाले पुरुषोंके लिये अखाद्य है। जो कार्तिकमें तेल लगाना, खाटपर सोना, दूसरेका अन्न लेना और काँसके बर्तनमें भोजन करना छोड़ देता है, उसीका व्रत परिपूर्ण होता है।

व्रती पुरुष प्रत्येक व्रतमें सदा ही पूर्वोक्त निषिद्ध वस्तुओंका त्याग करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये कृच्छ्र आदि व्रतोंका अनुष्ठान करता रहे। गृहस्थ पुरुष रविवारके दिन सदा ही आँवलेके फलका त्याग करे।

इसी प्रकार माघमें भी व्रती पुरुष उक्त नियमोंका पालन करे और श्रीहरिके समीप शास्त्रविहित जागरण भी करे। यथोक्त नियमोंके पालनमें लगे हुए कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्यको देखकर यमदूत उसी प्रकार भागते हैं, जैसे सिंहसे पीड़ित हाथी। भगवान् विष्णुके इस व्रतको सौ यज्ञोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ जानना चाहिये; क्योंकि यज्ञ करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकको पाता है और कार्तिकका व्रत करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधामको। इस पृथ्वीपर भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले जितने भी क्षेत्र हैं, वे सभी कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषके शरीरमें निवास करते हैं। मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाला जो कुछ भी दुष्कर्म या दुःस्वप्न होता है, वह कार्तिक-व्रतमें लगे हुए पुरुषको देखकर तत्काल नष्ट हो जाता है। इन्द्र आदि देवता भगवान् विष्णुकी आज्ञासे प्रेरित होकर कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषकी निरन्तर रक्षा करते रहते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे सेवक राजाकी रक्षा करते हैं। जहाँ सबके द्वारा सम्मानित वैष्णव-व्रतका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष नित्य निवास करता है, वहाँ ग्रह, भूत, पिशाच आदि नहीं रहते।

राजन्! अब मैं कार्तिक-व्रतके अनुष्ठानमें लगे हुए पुरुषके लिये उत्तम उद्यापन-विधिका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। व्रती मनुष्य कार्तिक शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको व्रतकी पूर्ति तथा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उद्यापन करे। तुलसीजीके ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनाये, जिसमें चार दरवाजे बने हों; उस मण्डपमें

सुन्दर बंदनवार लगाकर उसे पुष्पमय चँवरसे सुशोभित करे। चारों दरवाजोंपर पृथक्-पृथक् मिट्टीके चार द्वारपाल—पुण्यशील, सुशील, जय और विजयकी स्थापना करके उन सबका पूजन करे। तुलसीके मूलभागमें वेदीपर सर्वतोभद्र मण्डल बनाये, जो चार रंगोंसे रञ्जित होकर सुन्दर शोभासम्पन्न और अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता हो। सर्वतोभद्रके ऊपर पञ्चरत्नयुक्त कलशकी स्थापना करे। उसके ऊपर नारियलका महान् फल रख दे। इस प्रकार कलश स्थापित करके उसके ऊपर समुद्रकन्या लक्ष्मीजीके साथ शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले पीताम्बरधारी देवेश्वर श्रीविष्णुकी पूजा करे। सर्वतोभद्रके मण्डलमें इन्द्र आदि लोकपालोंका भी पूजन करना चाहिये। भगवान् द्वादशीको शयनसे उठे, त्रयोदशीको देवताओंने उनका दर्शन किया और चतुर्दशीको सबने उनकी पूजा की; इसीलिये इस समय भी उसी तिथिको इनकी पूजा की जाती है। उस दिन शान्त एवं शुद्धचित्त होकर भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये तथा आचार्यकी आज्ञासे देवदेवेश्वर श्रीविष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका षोडशोपचारद्वारा नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ प्रस्तुत करते हुए पूजन करना चाहिये। रात्रिमें गीत और वाद्य आदि माङ्गलिक उत्सवोंके साथ भगवान्‌के समीप जागरण करना चाहिये। जो भगवान् विष्णुके समीप जागरणकालमें भक्तिपूर्वक गान करते हैं, वे सौ जन्मोंकी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णुके निमित्त जागरणकालमें गीत-वाद्य करनेवालों तथा सहस्र गोदान करनेवालोंको भी समान फलकी ही प्राप्ति बतलायी गयी है। जो रात्रिमें वासुदेवके समक्ष जागरण करते समय भगवान् विष्णुके चरित्रोंका पाठ करके वैष्णव पुरुषोंका मनोरञ्जन करता है तथा मनमानी बातें नहीं करता, उसे प्रतिदिन कोटि तीर्थोंके सेवनके समान पुण्य प्राप्त होता है।

रात्रि-जागरणके पश्चात् पूर्णिमाको प्रातःकाल अपनी शक्तिके अनुसार तीस या एक सपत्नीक ब्राह्मणको भोजनके लिये निमन्त्रित करे। उस दिन किया हुआ दान, होम और जप अक्षय फल देनेवाला माना गया है; अतः व्रती पुरुष खीर आदिके द्वारा ब्राह्मणोंको भलीभाँति भोजन कराये। **'अतो देवाः'** आदि दो मन्त्रोंसे देवदेव भगवान् विष्णु तथा अन्य देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पृथक्-पृथक् तिल और खीरकी आहुति छोड़े। फिर यथाशक्ति दक्षिणा दे उन्हें प्रणाम करे। इसके बाद भगवान् विष्णु, देवगण तथा तुलसीका पुनः पूजन करे। कपिला गायकी विधिपूर्वक पूजा करे और व्रतका उपदेश करनेवाले सपत्नीक आचार्यका भी वस्त्र तथा आभूषणों आदिके द्वारा पूजन करे। अन्तमें सब ब्राह्मणोंसे क्षमा-प्रार्थना करे—'विप्रवरो! आप लोगोंकी कृपासे देवेश्वर भगवान् विष्णु मुझपर सदा प्रसन्न रहें। मैंने गत सात जन्मोंमें जो पाप किये हों, वे सब इस व्रतके प्रभावसे नष्ट हो जायँ। प्रतिदिन भगवान्‌के पूजनसे मेरे सम्पूर्ण मनोरथ सफल हों तथा इस देहका अन्त होनेपर मैं अत्यन्त दुर्लभ वैकुण्ठधामको प्राप्त करूँ।'

इस प्रकार क्षमायाचना करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न करनेके पश्चात् उन्हें विदा करे और गौसहित भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमा आचार्यको दान कर दे। तत्पश्चात् भक्त पुरुष सुहृदों और गुरुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। कार्त्तिक हो या माघ उसके लिये ऐसी ही विधि बतायी गयी है। जो मनुष्य इस प्रकार कार्त्तिकके उत्तम व्रतका पालन करता है, वह निष्पाप एवं मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समीपता प्राप्त करता है। सम्पूर्ण व्रतों, तीर्थों और दानोंसे जो फल मिलता है, वही इस कार्त्तिकव्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे करोड़गुना होकर मिलता है। जो कार्त्तिक-व्रतका अनुष्ठान करते हुए भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर होते हैं, वे धन्य हैं, वे सदा पूज्य

हैं तथा उन्हींके यहाँ सब प्रकारके शुभ फलोंका उदय होता है। देहमें स्थित हुए पाप उस मनुष्यके भयसे काँप उठते हैं और आपसमें कहने लगते हैं—'अरे! यह तो कार्त्तिकका व्रत करने लगा, अब हम कहाँ जायँगे।' जो कार्त्तिक-व्रतके इन नियमोंको भक्तिपूर्वक सुनता तथा वैष्णव पुरुषके आगे इनका वर्णन करता है, वे दोनों ही उत्तम व्रत करनेका फल पाते हैं और उनका दर्शन करनेसे मनुष्योंके पापोंका नाश हो जाता है।

नारदजी कहते हैं—राजन्! कार्तिक-व्रतके उद्यापनमें तुलसीके मूलप्रदेशमें भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है; क्योंकि तुलसी उनके लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी मानी गयी है। जिसके घरमें तुलसीका बगीचा लगा होता है, उसका वह घर तीर्थस्वरूप है। वहाँ यमराजके दूत नहीं जाते। तुलसीवन सब पापोंको हरनेवाला, पवित्र तथा मनोवाञ्छित भोगोंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, वे कभी यमराजको नहीं देखते। नर्मदाका दर्शन, गङ्गाका स्नान और तुलसीवनके पास रहना—ये तीनों एक समान माने गये हैं। रोपने, रक्षा करने, सींचने तथा दर्शन और स्पर्श करनेसे तुलसी मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए समस्त पापोंको भस्म कर डालती है। जो तुलसीकी मञ्जरियोंसे भगवान् विष्णु और शिवकी पूजा करता है, वह कभी गर्भमें नहीं आता तथा निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदियाँ तथा वासुदेव आदि देवता—ये सभी तुलसीदलमें निवास करते हैं। नृपश्रेष्ठ! जो तुलसीकी मञ्जरीसे संयुक्त होकर प्राणोंका परित्याग करता है, उसे श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त होता है—यह सत्य है, सत्य है। जो शरीरमें तुलसीकी मिट्टी लगाकर मृत्युको प्राप्त होता है वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी उसकी ओर साक्षात् यमराज भी नहीं देख सकते। जो मनुष्य

तुलसीकाष्ठका चन्दन लगाता है उसके शरीरको पाप नहीं छू सकते। जहाँ-जहाँ तुलसीवनकी छाया हो, वहीं श्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि वहाँ पितरोंके निमित्त दिया हुआ दान अक्षय होता है।

नृपश्रेष्ठ! जो आँवलेकी छायामें पिण्डदान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए पितर भी मुक्त हो जाते हैं। जो मस्तकपर, हाथमें, मुखमें तथा शरीरके अन्य किसी अवयवमें आँवलेका फल धारण करता है, उसे साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप समझना चाहिये। आँवला, तुलसी और द्वारकाकी मिट्टी (गोपीचन्दन)—ये जिसके शरीरमें स्थित हों, वह मनुष्य सदा जीवन्मुक्त कहलाता है। जो मनुष्य आँवलेके फल और तुलसीदलसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करता है, उसके लिये गङ्गास्नानका फल बताया गया है। जो आँवलेके पत्ते और फलोंसे देवताकी पूजा करता है, वह भाँति-भाँतिके सुवर्णमय पुष्पोंसे पूजा करनेका फल पाता है। कार्त्तिकमें जब सूर्य तुला राशिपर स्थित होते हैं, उस समय समस्त तीर्थ, मुनि, देवता और यज्ञ—ये सभी आँवलेके वृक्षका आश्रय लेकर रहते हैं। जो द्वादशीको तुलसीदल और कार्त्तिकमें आँवलेका पत्ता तोड़ता है, वह अत्यन्त निन्दित नरकोंमें पड़ता है। जो कार्त्तिकमें आँवलेकी छायामें बैठकर भोजन करता है, उसका वर्षभरका अन्नसंसर्गजनित दोष दूर हो जाता है। जो मनुष्य कार्त्तिकमें आँवलेकी जड़में भगवान् विष्णुकी पूजा करता है उसके द्वारा सदा सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें श्रीविष्णुका पूजन सम्पन्न हो जाता है। जैसे भगवान् विष्णुकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन असम्भव है उसी प्रकार आँवले और तुलसीके माहात्म्यका भी वर्णन नहीं हो सकता। जो आँवले और तुलसीकी उत्पत्ति-कथाको भक्तिपूर्वक सुनता और सुनाता है वह पापरहित हो अपने पूर्वजोंके साथ श्रेष्ठ विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है।

कार्तिक-व्रतके पुण्य-दानसे एक राक्षसीका उद्धार

राजा पृथुने कहा—मुनिश्रेष्ठ! कार्तिकका व्रत करनेवाले पुरुषके लिये जिस महान् फलकी प्राप्ति बतायी गयी है, उसका वर्णन कीजिये। किसने इस व्रतका अनुष्ठान किया था?

नारदजी बोले—राजन्! पूर्वकालकी बात है, सह्य पर्वतपर करवीरपुरमें धर्मदत्त नामके एक धर्मज्ञ ब्राह्मण रहते थे, जो भगवान् विष्णुका व्रत करनेवाले तथा भलीभाँति श्रीविष्णु-पूजनमें सर्वदा तत्पर रहनेवाले थे। वे द्वादशाक्षर मन्त्रका जप किया करते थे। अतिथियोंका सत्कार उन्हें विशेष प्रिय था। एक दिन कार्तिकमासमें श्रीहरिके समीप जागरण करनेके लिये वे भगवान्‌के मन्दिरकी ओर चले। उस समय एक पहर रात बाकी थी। भगवान्‌के पूजनकी सामग्री साथ लिये जाते हुए ब्राह्मणने मार्गमें देखा, एक राक्षसी आ रही है। उसकी आवाज बड़ी डरावनी थी। टेढ़ी-मेढ़ी दाढ़ें, लपलपाती हुई जीभ, धँसे हुए लाल-लाल नेत्र, नग्न शरीर, लम्बे-लम्बे ओठ और घर्घर शब्द—यही उसकी हुलिया थी। उसे देखकर ब्राह्मण देवता भयसे थर्रा उठे। सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने साहस करके पूजाकी सामग्री तथा जलसे ही उस राक्षसीके ऊपर रोषपूर्वक प्रहार किया। हरिनामका स्मरण करके तुलसीदलमिश्रित जलसे उसको मारा था, इसलिये उसका सारा पातक नष्ट हो गया। अब उसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त हुई दुर्दशाका स्मरण हो आया। उसने ब्राह्मणको दण्डवत् प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके कुपरिणामवश इस दशाको पहुँची हूँ। अब कैसे मुझे उत्तम गति प्राप्त होगी?'

राक्षसीको अपने आगे प्रणाम करते तथा पूर्वजन्मके किये हुए

कर्मोंका वर्णन करते देख ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। वे उससे इस प्रकार बोले—'किस कर्मके फलसे तुम इस दशाको पहुँची हो? कहाँसे आयी हो? तुम्हारा नाम क्या है? तथा तुम्हारा आचार-व्यवहार कैसा है? ये सारी बातें मुझे बताओ।'

कलहा बोली—ब्रह्मन्! मेरे पूर्वजन्मकी बात है, सौराष्ट्र नगरमें भिक्षु नामके एक ब्राह्मण रहते थे। मैं उन्हींकी पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था। मैं बड़े भयंकर स्वभावकी स्त्री थी। मैंने वचनसे भी कभी अपने पतिका भला नहीं किया। उन्हें कभी मीठा भोजन नहीं परोसा। मैं सदा उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया करती थी। कलह मुझे विशेष प्रिय था। वे ब्राह्मण मुझसे सदा उद्विग्न रहा करते थे। अन्ततोगत्वा मेरे पतिने दूसरी स्त्रीसे विवाह करनेका विचार कर लिया। तब मैंने विष खाकर अपने प्राण त्याग दिये। फिर यमराजके दूत आये और मुझे बाँधकर पीटते हुए यमलोकमें ले गये। यमराजने मुझे उपस्थित देख चित्रगुप्तसे पूछा—'चित्रगुप्त! देखो तो सही, इसने कैसा कर्म किया है? इसे शुभ कर्मका फल मिलेगा या अशुभ कर्मका?'

चित्रगुप्तने कहा—धर्मराज! इसने तो कोई भी शुभ कर्म नहीं किया है। यह स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती थी और अपने स्वामीको उसमेंसे कुछ भी नहीं देती थी। अतः बल्गुली (चमगादर)-की योनिमें जन्म लेकर यह अपनी विष्ठा खाती हुई जीवन धारण करे। इसने सदा अपने स्वामीसे द्वेष किया है तथा सर्वदा कलहमें ही इसकी प्रवृत्ति रही है; इसलिये यह शूकरीकी योनिमें जन्म ले विष्ठाका भोजन करती हुई समय व्यतीत करे। जिस बर्तनमें भोजन बनाया जाता है, उसीमें यह हमेशा खाया करती थी; अतः उस दोषके प्रभावसे यह अपनी ही संतानका भक्षण करनेवाली बिल्ली हो। तथा अपने स्वामीको निमित्त बनाकर इसने आत्मघात किया है, अतः यह अत्यन्त

निन्दनीय स्त्री कुछ कालतक प्रेत-शरीरमें भी निवास करे। दूतोंके साथ इसको यहाँसे मरुप्रदेशमें भेज देना चाहिये। वहाँ चिरकालतक यह प्रेतका शरीर धारण करके रहे। इसके बाद यह पापिनी तीन योनियोंका भी कष्ट भोगेगी।

कलहा कहती है—विप्रवर! मैं वही पापिनी कलहा हूँ, प्रेतके शरीरमें आये मुझे पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। मैं सदा ही अपने कर्मसे दुःखित तथा भूख-प्याससे पीड़ित रहा करती हूँ। एक दिन भूखसे पीड़ित होकर मैंने एक बनियेके शरीरमें प्रवेश किया और उसके साथ दक्षिण देशमें कृष्णा और वेणीके सङ्गमपर आयी। आनेपर ज्यों ही सङ्गमके किनारे खड़ी हुई त्यों ही उस बनियेके शरीरसे भगवान् शिव और विष्णुके पार्षद निकले और उन्होंने मुझे बलपूर्वक दूर भगा दिया। द्विजश्रेष्ठ! तबसे मैं भूखका कष्ट सहन करती हुई इधर-उधर घूम रही थी। इतनेमें ही आपके ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलका संसर्ग पाकर अब मेरे पाप नष्ट हो गये। विप्रवर! मुझपर कृपा कीजिये और बताइये, मैं इस प्रेत-शरीरसे और भविष्यमें प्राप्त होनेवाली भयंकर तीन योनियोंसे किस प्रकार मुक्त होऊँगी?

नारदजी कहते हैं—कलहाके ये वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ धर्मदत्तको उसके कर्मोंके परिणामका विचार करके बड़ा विस्मय और दुःख हुआ। उसकी ग्लानि देखकर उनका हृदय करुणासे द्रवित हो उठा। वे बहुत देरतक सोच-विचारकर खेदके साथ बोले—

धर्मदत्तने कहा—तीर्थ, दान और व्रत आदि शुभ साधनोंके द्वारा पाप नष्ट होते हैं; किन्तु तुम इस समय प्रेतके शरीरमें स्थित हो, अतः उन शुभ कर्मोंमें तुम्हारा अधिकार नहीं है। तथापि तुम्हारी ग्लानि देखकर मेरे मनमें बड़ा दुःख हो रहा है। तुम दुःखिनी हो,

तुम्हारा उद्धार किये बिना मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिलेगी; अतः मैंने जन्मसे लेकर आजतक जो कार्तिक-व्रतका अनुष्ठान किया है, उसका आधा पुण्य लेकर तुम उत्तम गतिको प्राप्त होओ।

यों कहकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर मन्त्रका श्रवण कराते हुए तुलसीमिश्रित जलसे ज्यों ही उसका अभिषेक किया त्यों ही वह प्रेत-शरीरसे मुक्त हो दिव्यरूपधारिणी देवी हो गयी। धधकती हुई आगकी ज्वालाके समान तेजस्विनी दिखायी देने लगी। लावण्यसे तो वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो साक्षात् लक्ष्मी हों। तदनन्तर उसने भूमिपर मस्तक टेककर ब्राह्मणदेवताको प्रणाम किया और आनन्दविभोर हो गद्गदवाणीमें कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपकी कृपासे मैं नरकसे छुटकारा पा गयी। मैं पापके समुद्रमें डूब रही थी, आप मेरे लिये नौकाके समान हो गये।'

वह इस प्रकार ब्राह्मणदेवसे वार्तालाप कर ही रही थी कि आकाशसे एक तेजस्वी विमान उतरता दिखायी दिया। वह श्रीविष्णुके समान रूप धारण करनेवाले पार्षदोंसे युक्त था। पास आनेपर विमानके द्वारपर खड़े हुए पुण्यशील और सुशील नामक पार्षदोंने उस देवीको विमानपर चढ़ा लिया। उस समय उस विमानको देखकर धर्मदत्तको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने श्रीविष्णुरूपधारी पार्षदोंका दर्शन करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ब्राह्मणको प्रणाम करते देख पुण्यशील और सुशीलने उन्हें उठाया और उनकी प्रशंसा करते हुए यह धर्मयुक्त वचन कहा।

दोनों पार्षद बोले—द्विजश्रेष्ठ! तुम्हें धन्यवाद है। क्योंकि तुम सदा भगवान् विष्णुकी आराधनामें संलग्न रहते हो। दीनोंपर दया करनेका तुम्हारा स्वभाव है। तुम धर्मात्मा और श्रीविष्णुव्रतका अनुष्ठान करनेवाले हो। तुम बचपनसे लेकर अबतक जो कल्याणमय कार्तिकका

व्रत किया है, उसके आधेका दान करके दूना पुण्य प्राप्त कर लिया है। तुम बड़े दयालु हो, तुम्हारे द्वारा दान किये हुए कार्तिक-व्रतके अङ्गभूत तुलसीपूजन आदि शुभ कर्मोंके फलसे यह स्त्री आज भगवान् विष्णुके समीप जा रही है। तुम भी इस शरीरका अन्त होनेपर अपनी दोनों पत्नियोंके साथ भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाओगे और उन्हींके समान रूप धारण करके सदा उनके समीप निवास करोगे। धर्मदत्त! जिन लोगोंने तुम्हारी ही भाँति श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना की है, वे धन्य और कृतकृत्य हैं; तथा संसारमें उन्हींका जन्म लेना सार्थक है। जिन्होंने पूर्वकालमें राजा उत्तानपादके पुत्र ध्रुवको ध्रुवपदपर स्थापित किया था, उन श्रीविष्णुकी यदि भलीभाँति आराधना की जाय तो वे प्राणियोंको क्या नहीं दे डालते। भगवान्‌के नामोंका स्मरण करनेमात्रसे देहधारी जीव सद्गतिको प्राप्त हो जाते हैं। पूर्वकालमें जब गजराजको ग्राहने पकड़ लिया था, उस समय उसने श्रीहरिके नामस्मरणसे ही संकटसे छुटकारा पाकर भगवान्‌की समीपता प्राप्त की थी और वही अब भगवान्‌का 'जय' नामसे प्रसिद्ध पार्षद है। तुमने भी श्रीहरिकी आराधना की है, अतः वे तुम्हें अपने समीप अवश्य स्थान देंगे।

कार्तिक-माहात्म्यके प्रसङ्गमें राजा चोल और विष्णुदासकी कथा

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार विष्णुपार्षदोंके वचन सुनकर धर्मदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ, वे उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले—'प्रायः सभी लोग भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले श्रीविष्णुकी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थसेवन और तपस्याओंके द्वारा विधिपूर्वक आराधना करते

हैं; उन समस्त साधनोंमें कौन-सा ऐसा साधन है जो श्रीविष्णुको प्रीतिकारक तथा उनके सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है? किस साधनका अनुष्ठान करनेसे उपर्युक्त सभी साधनोंका अनुष्ठान स्वत: हो जाता है?

दोनों पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है; अब एकाग्रचित्त होकर सुनो, हम इतिहाससहित प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करते हैं। पहले काञ्चीपुरीमें चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं; उनके अधीन जितने देश थे वे भी चोल नामसे ही विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डलका शासन करते थे, उस समय कोई भी मनुष्य दरिद्र, दु:खी, पापमें मन लगानेवाला अथवा रोगी नहीं था। उन्होंने इतने यज्ञ किये थे, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती। उनके यज्ञोंके सुवर्णमय एवं शोभाशाली यूपोंसे भरे हुए ताम्रपर्णी नदीके दोनों किनारे चैत्ररथ वनके समान सुशोभित होते थे। एक समयकी बात है, राजा चोल 'अनन्तशयन' नामक तीर्थमें गये, जहाँ जगदीश्वर श्रीविष्णु योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे। वहाँ लक्ष्मीरमण भगवान् श्रीविष्णुके दिव्य विग्रहकी राजाने विधिपूर्वक पूजा की। मणि, मोती तथा सुवर्णके बने हुए सुन्दर फूलोंसे पूजन करके उन्होंने भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्यों ही बैठे, उसी समय उनकी दृष्टि भगवान्‌के पास आते हुए एक ब्राह्मणपर पड़ी, जो उन्हींकी काञ्चीनगरीके निवासी थे। उनका नाम विष्णुदास था। वे भगवान्‌की पूजाके लिये अपने हाथमें तुलसीदल और जल लिये हुए थे। निकट आनेपर उन ब्रह्मर्षिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवदेव भगवान्‌को स्नान कराया और तुलसीकी मञ्जरी तथा पत्तोंसे विधिवत् पूजा की। राजा चोलने जो पहले रत्नोंसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह सब तुलसी-पूजासे ढक गयी। यह देख राजा

कुपित होकर बोले—'विष्णुदास! मैंने मणियों तथा सुवर्णसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी! किन्तु तुमने तुलसीदल चढ़ाकर सब ढक दी। बताओ, ऐसा क्यों किया? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, तुम बड़े मूर्ख हो; भगवान् विष्णुकी भक्तिको बिलकुल नहीं जानते। तभी तो तुम अत्यन्त सुन्दर सजी-सजायी पूजाको पत्तोंसे ढके जा रहे हो। तुम्हारे इस बर्तावपर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।'

विष्णुदास बोले—राजन्! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है, केवल राजलक्ष्मीके कारण आप घमण्ड कर रहे हैं। बताइये तो, आजसे पहले आपने कितने वैष्णव व्रतोंका पालन किया है?

राजाने कहा—ब्राह्मण! यदि तुम विष्णुभक्तिसे अत्यन्त गर्वमें आकर ऐसी बात करते हो तो बताओ, तुममें कितनी भक्ति है? तुम तो दरिद्र हो, निर्धन हो। तुमने श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाले यज्ञ और दान आदि कभी नहीं किये हैं तथा पहले कहीं कोई देवालय भी नहीं बनवाया है। ऐसी दशामें भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना घमण्ड है! अच्छा, तो आज यहाँ जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण उपस्थित हैं, वे सभी कान खोलकर मेरी बात सुन लें। देखना है, मैं पहले भगवान् विष्णुका दर्शन पाता हूँ या यह; इससे लोगोंको स्वयं ही ज्ञात हो जायगा कि हम दोनोंमेंसे किसमें कितनी भक्ति है।

दोनों पार्षद बोले—ब्रह्मन्! यह कहकर राजा चोल अपने राजभवनको चले गये और उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें बहुत-से ऋषियोंका समुदाय एकत्रित हुआ। बहुत-सा अन्न खर्च किया गया और प्रचुर दक्षिणा बाँटी गयी। जैसे पूर्वकालमें गयाक्षेत्रके भीतर ब्रह्माजीने

समृद्धिशाली यज्ञका अनुष्ठान किया था, उसी प्रकार राजा चोलने भी महान् यज्ञ आरम्भ किया। उधर विष्णुदास भी वहीं भगवान्‌के मन्दिरमें ठहर गये और श्रीविष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले शास्त्रोक्त नियमोंका भलीभाँति पालन करते हुए सदा ही व्रतका अनुष्ठान करने लगे। माघ और कार्तिकके व्रत, तुलसीके बगीचेका भलीभाँति पालन, एकादशीका व्रत, द्वादशाक्षर मन्त्रका जप तथा गीत-नृत्य आदि माङ्गलिक उत्सवोंके साथ षोडशोपचारद्वारा प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा—यही उनकी जीवनचर्या थी। वे इन्हीं व्रतोंका पालन करते थे। चलते, खाते और सोते समय भी उन्हें निरन्तर श्रीविष्णुका स्मरण बना रहता था। वे समदर्शी थे और सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवान् विष्णुको स्थित देखते थे। उन्होंने भगवान् विष्णुके संतोषके लिये उद्यापनविधिसहित माघ और कार्तिकके विशेष-विशेष नियमोंका भी सर्वदा पालन किया। इस प्रकार राजा चोल और विष्णुदास दोनों ही भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे। दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थित रहते थे, दोनोंकी ही इन्द्रियाँ और दोनोंके ही कर्म भगवान्‌में ही केन्द्रित थे।

एक दिनकी बात है, विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार किया; किन्तु उसे किसीने चुरा लिया। चुरानेवालेपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ी। विष्णुदासने देखा, भोजन गायब है; फिर भी उन्होंने दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये अवकाश नहीं मिलता, अतः प्रतिदिनके नियमके भंग हो जानेका भय था। दूसरे दिन उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों ही भगवान् विष्णुको भोग लगानेके लिये गये त्यों ही कोई आकर फिर सारा भोजन हड़प ले गया। इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण करता रहा। इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ। वे मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—'अहो!

यह कौन प्रतिदिन आकर मेरी रसोई चुरा ले जाता है? मैं क्षेत्र-संन्यास ले चुका हूँ, अतः अब किसी तरह इस स्थानका परित्याग नहीं कर सकता। यदि दुबारा बनाकर भोजन करूँ तो सायंकालकी यह पूजा कैसे छोड़ दूँ। कोई-सा भी पाक बनाकर मैं तुरंत भोजन तो करूँगा ही नहीं; क्योंकि जबतक सारी सामग्री भगवान् विष्णुको निवेदन न कर लूँ तबतक मैं भोजन नहीं करता। प्रतिदिन उपवास करनेसे मैं इस व्रतकी समाप्तितक जीवित कैसे रह सकता हूँ। अच्छा, आज मैं रसोईकी भलीभाँति रक्षा करूँगा।'

यों सोचकर भोजन बनानेके पश्चात् वे वहीं कहीं छिपकर खड़े हो गये। इतनेमें ही एक चाण्डाल दिखायी दिया, जो रसोईका अन्न हड़प ले जानेको तैयार खड़ा था। भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो रहा था, मुखपर दीनता छा रही थी, शरीरमें हाड़ और चामके सिवा और कुछ बाकी नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका हृदय करुणासे व्यथित हो उठा। उन्होंने भोजन लेकर जाते हुए चाण्डालपर दृष्टि डाली और कहा—'भैया! जरा ठहरो, ठहरो। क्यों रूखा-सूखा खाते हो। यह घी तो ले लो।' इस तरह बोलते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख चाण्डाल बड़े वेगसे भागा और भयसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चाण्डालको भयभीत और मूर्च्छित देख द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास वेगसे चलकर उसके पास पहुँचे और करुणावश अपने वस्त्रके किनारेसे उसको हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ तो विष्णुदासने देखा—वह चाण्डाल नहीं, साक्षात् भगवान् नारायण ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये सामने विराजमान हैं। कटिमें पीताम्बर, चार भुजाएँ, हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न तथा मस्तकपर किरीट शोभा पा रहे हैं। अलसीके फूलकी भाँति श्यामसुन्दर शरीर और कौस्तुभमणिसे

जगमगाते हुए वक्षःस्थलकी अपूर्व शोभा हो रही है। अपने प्रभुको प्रत्यक्ष देखकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास सात्त्विक[1] भावोंके वशीभूत हो गये। वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। उस समय वहाँ इन्द्र आदि देवता भी आ पहुँचे। गन्धर्व और अप्सराएँ गाने और नाचने लगीं। वह स्थान सैकड़ों विमानोंसे भर गया और देवर्षियोंके समुदायसे सुशोभित होने लगा। चारों ओर गीत और वाद्योंकी ध्वनि छा गयी। तब भगवान् विष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने-ही-जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा, विष्णुदास एक सुन्दर विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं। विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने तुरंत ही अपने गुरु महर्षि मुद्गलको बुलाया और इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

राजा बोले—जिसके साथ लाग-डाँट होनेके कारण मैंने यह यज्ञ-दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले ही वैकुण्ठधाममें जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया; तथापि अभीतक भगवान् मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और इस ब्राह्मणको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अतः जान पड़ता है, भगवान् विष्णु केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभुका दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।

१- प्रेमकी प्रगाढ़ावस्थामें होनेवाले आठ प्रकारके अङ्ग-विकारोंको जो सत्त्वगुणकी प्रेरणासे प्रकट होते हैं, सात्त्विक भाव कहते हैं। उनके नाम ये हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, विवर्णता, आँसू और प्रलय।

दोनों पार्षद कहते हैं—यों कहकर राजाने अपने भानजेको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे बचपनसे ही यज्ञकी दीक्षा लेकर उसीमें संलग्न रहते थे, इसलिये उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। यही कारण है कि उस देशमें अबतक भानजे ही सदा राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं। वे सब-के-सब राजा चोलके द्वारा स्थापित आचारका ही पालन करते हैं। भानजेको राज्य देनेके पश्चात् राजा यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर श्रीविष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्च स्वरसे निम्नाङ्कित वचन बोले—'भगवान् विष्णु! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा स्थिर भक्ति प्रदान कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निमें कूद पड़े। उस समय मुद्गल मुनिने क्रोधमें आकर अपनी शिखा उखाड़ डाली। तभीसे आजतक उस गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले समस्त मुद्गल ब्राह्मण बिना शिखाके ही रहते हैं। राजा ज्यों ही अग्निकुण्डमें कूदे, उसी समय भक्तवत्सल भगवान् विष्णु प्रकट हो गये और उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बिठाया; फिर अपने ही समान रूप देकर उन देवेश्वरने देवताओंसहित वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया। उक्त दोनों भक्तोंमें जो विष्णुदास थे, वे तो पुण्यशील नामसे प्रसिद्ध भगवान्के पार्षद हुए तथा जो राजा चोल थे, उनका नाम सुशील हुआ। हम वे ही दोनों हैं। लक्ष्मीजीके प्रियतम श्रीहरिने हमें अपने समान रूप देकर अपना द्वारपाल बना लिया है।

इसलिये धर्मज्ञ ब्राह्मण! तुम भी सदा भगवान् विष्णुके व्रतमें स्थित रहो। मात्सर्य और दम्भका परित्याग करके सर्वत्र समान दृष्टि रखो। तुला, मकर और मेषकी संक्रान्तिमें सदा प्रातःस्नान किया करो। एकादशीके व्रतमें लगे रहो और तुलसीवनकी रक्षा करते रहो। ब्राह्मणों, गौओं तथा वैष्णवोंकी सदा ही सेवा करो। मसूर, काँजी और बैगन

खाना छोड़ दो। धर्मदत्त! ऐसा करनेसे तुम भी शरीरका अन्त होनेपर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करोगे। जैसे हमलोगोंने भगवान्‌की भक्तिसे ही उन्हें पाया है उसी प्रकार तुम भी उन्हें प्राप्त कर लोगे। तुमने जन्मसे लेकर अबतक जो श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, इससे यज्ञ, दान और तीर्थ भी बड़े नहीं हैं। विप्रवर! तुम धन्य हो; क्योंकि तुमने जगद्गुरु भगवान् श्रीविष्णुको प्रसन्न करनेवाले इस व्रतका अनुष्ठान किया है; जिसके एक भागका पुण्य पाकर ही प्रेतयोनिमें पड़ी हुई कलहा मुक्त हो गयी। अब हम लोग इसे भगवान् विष्णुके लोकमें ले जा रहे हैं।

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार विमानपर बैठे हुए विष्णुके दूतोंने धर्मदत्तको उपदेश देकर कलहाके साथ वैकुण्ठधामकी यात्रा की। तत्पश्चात् धर्मदत्त भी पूर्ण विश्वासके साथ उस व्रतमें लगे रहे और शरीरका अन्त होनेपर अपनी दोनों पत्नियोंके साथ वे भगवान्‌के परमधामको चले गये। जो पुरुष इस प्राचीन इतिहासको सुनता और सुनाता है, वह जगद्गुरु भगवान्‌की कृपासे उनका सान्निध्य प्राप्त करानेवाली उत्तम गति पाता है।

पुण्यात्माओंके संसर्गसे पुण्यकी प्राप्तिके प्रसंगमें धनेश्वर ब्राह्मणकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! यह कथा सुनकर राजा पृथुके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भक्तिपूर्वक देवर्षि नारदका पूजन करनेके पश्चात् उन्हें विदा किया। इसलिये माघस्नान, कार्तिकस्नान तथा एकादशी—ये तीनों व्रत मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। वनस्पतियोंमें तुलसी, महीनोंमें कार्तिक, तिथियोंमें एकादशी तथा पुण्य-क्षेत्रोंमें

द्वारकापुरी मुझे विशेष प्रिय हैं।* जो अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर इन सबका सेवन करता है वह मुझे बहुत ही प्रिय होता है। यज्ञ आदिके द्वारा भी कोई मेरा ऐसा प्रिय नहीं हो सकता, जैसा कि पूर्वोक्त चारोंके सेवनसे होता है।

सत्यभामा बोलीं—नाथ! आपने मुझे जो कथा सुनायी है, वह बड़े ही आश्चर्यमें डालनेवाली है; क्योंकि कलहा दूसरेके दिये हुए पुण्यसे ही मुक्ति पा गयी। इस कार्तिकमासका ऐसा प्रभाव है और यह आपको इतना प्रिय है कि इसमें किये हुए स्नान-दानसे कलहाके पतिद्रोह आदि पाप भी नष्ट हो गये। प्रभो! जो दूसरेका किया हुआ पुण्य है, वह उसके देनेसे तो मिल जाता है; किन्तु बिना दिया हुआ पुण्य मनुष्य किस मार्गसे पा सकता है?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें देश, ग्राम और कुल भी मनुष्यके किये हुए पुण्य और पापके भागी होते हैं; परन्तु कलियुगमें केवल कर्ताको ही पुण्य और पापका फल भोगना पड़ता है। पढ़ानेसे, यज्ञ करानेसे अथवा एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेसे भी मनुष्य दूसरोंके पुण्य और पापका चौथाई भाग परोक्षरूपसे पा लेता है। एक आसनपर बैठने, एक सवारीपर चलने, श्वासका स्पर्श होने और परस्पर अङ्ग सट जानेसे भी निश्चय ही पुण्य-पापके छठे अंशका फलभागी होना पड़ता है। स्पर्श करनेसे, बातचीत करनेसे तथा दूसरेकी स्तुति करनेसे भी मानव पुण्य-पापके दशमांशको ग्रहण करता है। देखनेसे, नाम सुननेसे तथा मनके द्वारा चिन्तन करनेसे दूसरेके पुण्य-पापका शतांश भाग प्राप्त होता है। जो दूसरेकी निन्दा करता, चुगली खाता और उसे धिक्कार देता है, वह

* वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्तिकः प्रियः। एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम॥

उसके किये हुए पातकको स्वयं लेकर बदलेमें अपने पुण्यको देता है।* एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवाले लोगोंमेंसे जो किसीको परोसनेमें छोड़ देता है, उसके पुण्यका छठा भाग उस छोड़े हुए व्यक्तिको मिल जाता है। जो स्नान और सन्ध्या आदि करते समय किसीको छूता या उससे बातचीत करता है, उसे अपने कर्मजनित पुण्यके छठे अंशको उस व्यक्तिके लिये निश्चय ही देना पड़ता है।† जो धर्मके उद्देश्यसे दूसरे मनुष्यसे धनकी याचना करता है, उसके पुण्य-कर्मके फलको धन देनेवाला व्यक्ति भी पाता है। जो दूसरेका धन चुराकर पुण्य-कर्म करता है, उसका फल धनीको ही मिलता है, कर्म करनेवालेको नहीं। जो मनुष्य दूसरेका ऋण चुकाये बिना ही मर जाता है, उसके पुण्यको धनी मनुष्य अपने धनके अनुसार बाँट लेता है। कर्म करनेकी सलाह देनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, सामग्री जुटानेवाला तथा बलसे सहायता करनेवाला पुरुष भी पुण्य-पापके छठे अंशको पा लेता है। राजा अपनी प्रजासे, गुरु शिष्यसे, पति अपनी पत्नीसे तथा पिता अपने पुत्रसे उसके पुण्य-पापका छठा अंश प्राप्त करता है। स्त्री भी यदि सदा अपने पतिके मनके अनुसार चले और सदा उसे संतोष देनेवाली हो तो वह पतिके पुण्यका आधा भाग प्राप्त करती है। स्वयं धन देकर अपने नौकर या पुत्रके अतिरिक्त किसी भी दूसरेके हाथसे दान करानेवाले पुरुषके पुण्य-कर्मोंके छठे भागको कर्ता ले लेता है। वृत्ति देनेवाला पुरुष वृत्तिभोगीके पुण्यका छठा अंश ले लेता है; किन्तु यदि उसके बदलेमें उसने

* परस्य निन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः। तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः॥ (११४। १७)

† स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन् यः स्पृशेद्वा प्रभाषते। स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै सुनिश्चितम्॥ (११४। २१)

अपनी या दूसरेकी सेवा न करायी हो, तभी उसे लेनेका अधिकारी होता है। इस प्रकार दूसरोंके किये हुए पुण्य और पाप बिना दिये भी सदा आते रहते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जो बहुत ही उत्तम और पुण्यमयी बुद्धि प्रदान करनेवाला है, उसे सुनो।

पूर्वकालकी बात है, अवन्तीपुरीमें धनेश्वर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मणोचित कर्मसे भ्रष्ट, पापपरायण और खोटी बुद्धिवाला था, रस, कम्बल और चमड़ा आदि बेचकर तथा झूठ बोलकर वह जीविका चलाता था। उसका मन चोरी, वेश्यागमन, मदिरापान और जुए आदिमें सदा आसक्त रहता था। एक बार वह खरीद-बिक्रीके कामसे देश-देशान्तरमें भ्रमण करता हुआ माहिष्मतीपुरीमें जा पहुँचा, जिसकी चहारदीवारीसे सटकर बहनेवाली पापनाशिनी नर्मदा सदा सुशोभित होती रहती है। वहाँ कार्तिकका व्रत करनेवाले बहुत-से मनुष्य अनेक गाँवोंसे स्नान करनेके लिये आये थे। धनेश्वरने उन सबको देखा। कितने ही ब्राह्मण स्नान करके यज्ञ तथा देव-पूजनमें लगे थे। कुछ लोग पुराणोंका पाठ करते और कुछ लोग सुनते थे। कितने ही भक्त नाच, गान, दान और वाद्यके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुतिमें संलग्न थे। धनेश्वर प्रतिदिन घूम-घूमकर वैष्णवोंके दर्शन, स्पर्श तथा उनसे वार्तालाप करता था। इससे उसे श्रीविष्णुके नाम सुननेका शुभ अवसर प्राप्त होता था। इस प्रकार वह एक मासतक वहाँ टिका रहा। कार्तिक-व्रतके उद्यापनमें भक्तपुरुषोंने जो श्रीहरिके समीप जागरण किया, उसको भी उसने देखा। उसके बाद पूर्णिमाको व्रत करनेवाले मनुष्योंने जो ब्राह्मणों और गौओंका पूजन आदि किया तथा दक्षिणा और भोजन आदि दिये, उन सबका भी उसने अवलोकन किया। तत्पश्चात् सूर्यास्तके समय श्रीशङ्करजीकी प्रसन्नताके लिये जो दीपोत्सर्गकी विधि की गयी, उसपर भी धनेश्वरकी दृष्टि पड़ी। उस

तिथिको भगवान् शङ्करने तीनों पुरोंका दाह किया था, इसीलिये भक्तपुरुष उस दिन दीपोत्सर्गका महान् उत्सव किया करते हैं। जो मुझमें और शिवजीमें भेद-बुद्धि करता है, उसके सारे पुण्य-कर्म निष्फल हो जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। धनेश्वर नर्मदाके तटपर नृत्य आदि देखता हुआ घूम रहा था। इतनेमें ही एक काले साँपने उसे काट लिया। वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे गिरा देख बहुत-से मनुष्योंने दयावश उसको चारों ओरसे घेर लिया और तुलसीमिश्रित जलके द्वारा उसके मुखपर छींटे देना आरम्भ किया। देहत्यागके पश्चात् धनेश्वरको यमराजके दूतोंने बाँधा और क्रोधपूर्वक कोड़ोंसे पीटते हुए वे उसे संयमनीपुरीको ले गये। चित्रगुप्तने धनेश्वरको देखकर उसे बहुत फटकारा और उसने बचपनसे लेकर मृत्युपर्यन्त जितने दुष्कर्म किये थे, वे सब उन्होंने यमराजको बताये।

चित्रगुप्त बोले—प्रभो! बचपनसे लेकर मृत्युपर्यन्त इसका कोई पुण्य नहीं दिखायी देता। यह दुष्ट केवल पापका मूर्तिमान् स्वरूप दीख पड़ता है, अतः इसे कल्पभर नरकमें पकाया जाय।

यमराज बोले—प्रेतराज! केवल पापोंपर ही दृष्टि रखनेवाले इस दुष्टको मुद्गरोंसे पीटते हुए ले जाओ और तुरंत ही कुम्भीपाकमें डाल दो।

यमराजकी आज्ञा पाकर प्रेतराज पापी धनेश्वरको ले चला। मुद्गरोंकी मारसे उसका मस्तक विदीर्ण हो गया था। कुम्भीपाकमें तेलके खौलनेका खलखल शब्द हो रहा था। प्रेतराजने उसे तुरंत ही उसमें डाल दिया। वह ज्यों ही कुम्भीपाकमें गिरा त्यों ही उसका तेल ठंडा हो गया—ठीक उसी तरह जैसे पूर्वकालमें भक्तप्रवर प्रह्लादको डालनेसे दैत्योंकी जलायी हुई आग बुझ गयी थी। यह महान् आश्चर्यकी बात देखकर प्रेतराजको बड़ा विस्मय हुआ। उसने

बड़े वेगसे आकर यह सारा हाल यमराजको कह सुनाया। प्रेतराजकी कही हुई कौतूहलपूर्ण बात सुनकर यमने कहा—'आह यह कैसी बात है!' फिर उसे साथ ले वे उस स्थानपर आये और उस घटनापर विचार करने लगे। इतनेमें ही देवर्षि नारद हँसते हुए बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आये। यमराजने भलीभाँति उनका पूजन किया। उनसे मिलकर देवर्षि नारदजीने इस प्रकार कहा।

नारदजी बोले—सूर्यनन्दन! यह नरक भोगनेके योग्य नहीं है; क्योंकि इसके द्वारा ऐसा कर्म बन गया है जो नरकका नाश करनेवाला है। जो पुरुष पुण्य-कर्म करनेवाले लोगोंका दर्शन, स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करता है, वह उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त कर लेता है। यह तो एक मासतक श्रीहरिके कार्तिक-व्रतका अनुष्ठान करनेवाले असंख्य मनुष्योंके सम्पर्कमें रहा है; अतः उन सबके पुण्यांशका भागी हुआ है। उनकी सेवा करनेके कारण इसे सम्पूर्ण व्रतका पुण्य प्राप्त हुआ है, अतः इसके कार्तिक-व्रतसे उत्पन्न होनेवाले पुण्योंकी कोई गिनती नहीं है। कार्तिक-व्रत करनेवाले पुरुषोंके बड़े-से-बड़े पातकोंका भी भक्तवत्सल श्रीविष्णु पूर्णतया नाश कर डालते हैं। इतना ही नहीं, अन्तकालमें वैष्णव पुरुषोंने तुलसीमिश्रित नर्मदाके जलसे इसको नहलाया है और श्रीविष्णुके नामका भी श्रवण कराया है; इसलिये इसके सारे पाप नष्ट हो गये हैं। अब धनेश्वर उत्तम गति प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है। यह वैष्णव पुरुषोंका कृपापात्र है, अतः इसे नरकमें न पकाओ। इसको अनिच्छासे पुण्य प्राप्त हुआ है; इसलिये यह यक्षयोनिमें रहे और सम्पूर्ण नरकोंके दर्शनमात्रसे अपने पापोंका भोग पूरा कर ले।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! यों कहकर देवर्षि नारदजी चले गये। फिर यमराज अपने सेवकके द्वारा उस ब्राह्मणको सम्पूर्ण

नरकोंका दर्शन करानेके लिये वहाँसे ले गये। इसके बाद यमकी आज्ञाका पालन करनेवाला प्रेतराज धनेश्वरको सम्पूर्ण नरकोंके पास ले गया और उनका अवलोकन कराता हुआ इस प्रकार कहने लगा।

प्रेतराजने कहा—धनेश्वर! महान् भय देनेवाले इन घोर नरकोंकी ओर दृष्टि डालो। इनमें पापी पुरुष सदा यमराजके सेवकोंद्वारा पकाये जाते हैं। यह जो भयानक नरक दिखायी देता है, इसका नाम तप्तबालुक है। इसमें ये पापाचारी जीव अपनी देह दग्ध होनेके कारण क्रन्दन कर रहे हैं। जो मनुष्य बलिवैश्वदेवके अन्तमें भूखसे दुर्बल हो घरपर आये हुए अतिथियोंका सत्कार नहीं करते, वे अपने पापकर्मके कारण इस नरकमें कष्ट भोगते हैं। जो गुरु, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, देवता तथा मूर्धाभिषिक्त राजाओंको लात मारते हैं, वे ही पापी यहाँ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहाँ तपी हुई बालूपर चलनेके कारण इनके पैर जल गये हैं। इस नरकके छः अवान्तर भेद हैं। नाना प्रकारके पापोंके कारण इसमें आना पड़ता है। इसी प्रकार यह दूसरा महान् नरक अन्धतामिस्र कहलाता है। देखो, यहाँ सुईके समान मुँहवाले कीड़ोंके द्वारा पापियोंके शरीर विदीर्ण हो रहे हैं। यह नरक भयानक मुखवाले अनेक प्रकारके कीटोंसे ठसाठस भरा हुआ है। यह तीसरा क्रकच नामक नरक है। यह भी बड़ा भयानक दिखायी देता है। इसमें ये पापी मनुष्य आरेसे चीरे जानेका कष्ट भोगते हैं। असिपत्रवन आदि भेदोंसे यह नरक छः प्रकारका बताया गया है। जो दूसरोंका पत्नी और पुत्र आदिसे तथा अन्यान्य प्रियजनोंसे विछोह कराते हैं, वे ही लोग यहाँ कष्ट भोगते हैं। तलवारके समान पत्तोंसे इनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं और इसी भयसे ये इधर-उधर भाग रहे हैं। देखो, ये पापी कितने कष्ट भोगते हैं और किस प्रकार इधर-उधर क्रन्दन करते फिरते हैं। यह चौथा नरक तो और भी भयानक है।

इसका नाम अर्गला है। देखो, यमराजके दूत नाना प्रकारके पाशोंसे बाँधकर इन पापियोंको मुद्गर आदिसे पीट रहे हैं और ये जोर-जोरसे चीख रहे हैं। जो साधु पुरुषों और ब्राह्मण आदिको गला पकड़कर या और किसी उपायसे कहीं आने-जानेसे रोकते हैं, वे पापी यमराजके सेवकोंद्वारा यहाँ यातनामें डाले जाते हैं। वध और भेदन आदिके द्वारा इस नरकके भी छः भेद हैं। अब पाँचवें नरकपर दृष्टिपात करो। इसका नाम कूटशाल्मलि है। यहाँ जो ये सेमल आदिके वृक्ष खड़े हैं, ये सभी जलते हुए अँगारेके समान हैं। इसमें पापियोंको यातना दी जाती है। परायी स्त्री और पराये धनका अपहरण करनेवाले तथा दूसरोंसे द्रोह करनेवाले पापी सदा ही यहाँ कष्ट भोगते हैं। यह छठा नरक और भी अद्भुत है। इसे रक्तपूय कहते हैं—इसमें रक्त और पीब भरा रहता है। इसकी ओर देखो तो सही, इसमें कितने ही पापी मनुष्य नीचे मुँह करके लटकाये गये हैं और भयानक कष्ट भोग रहे हैं। ये सब अभक्ष्य-भक्षण और निन्दा करनेवाले तथा चुगली खानेवाले हैं। कोई डूब रहे हैं, कोई मारे जा रहे हैं। ये सब-के-सब डरावनी आवाजके साथ चीख रहे हैं। इस नरकके भी विगन्ध आदि छः भेद हैं। धनेश्वर! अब इधर दृष्टि डालो। यह भयङ्कर दिखायी देनेवाला सातवाँ नरक कुम्भीपाक है। यह तेल आदि द्रव्योंके भेदसे छः प्रकारका है। यमराजके दूत महापातकी पुरुषोंको इसीमें डालकर औंटाते हैं और वे पापी इसमें अनेक हजार वर्षोंतक डूबते-उतराते रहते हैं। देखो, वे भयानक नरक सब मिलाकर बयालीस हैं। बिना इच्छाके किया हुआ पातक शुष्क कहलाता है और इच्छापूर्वक किये हुए पातकको आर्द्र कहा गया है। आर्द्र और शुष्क आदि भेदोंसे प्रत्येक नरक दो प्रकारका है। इस प्रकार ये नरक पृथक्-

पृथक् चौरासीकी संख्यामें स्थित हैं। प्रकीर्ण, अपाङ्क्तेय, मलिनीकरण, जातिभ्रंशकर, उपपातक, अतिपातक और महापातक—ये सात प्रकारके पातक माने गये हैं। इनके कारण पापी पुरुष उपर्युक्त सात नरकोंमें क्रमशः यातना भोगते हैं। तुम्हें कार्तिक-व्रत करनेवाले पुरुषोंका संसर्ग प्राप्त हो चुका था; इसलिये अधिक पुण्यराशिका सञ्चय हो जानेसे नरकोंके कष्टसे छुटकारा मिल गया।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—सत्यभामा! इस प्रकार प्रेतराज धनेश्वरको नरकोंका दर्शन कराकर उसे यक्षलोकमें ले गया तथा वहाँ जाकर वह यक्ष हुआ।

अशक्तावस्थामें कार्तिक-व्रतके निर्वाहका उपाय

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! भगवान् वासुदेव अपनी प्रियतमा सत्यभामाको यह कथा सुनाकर 'सायंकालका सन्ध्योपासन करनेके लिये अपनी माता देवकीके भवनमें चले गये। इस पापनाशक कार्तिकमासका ऐसा ही प्रभाव बतलाया गया है। यह भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है तथा भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला है। रातमें भगवान् विष्णुके समीप जागना, प्रातःकाल स्नान करना, तुलसीकी सेवामें संलग्न रहना, उद्यापन करना और दीप-दान देना—ये कार्तिकमासके पाँच नियम हैं।* इन पाँचों नियमोंके पालनसे कार्तिकका व्रत करनेवाला पुरुष पूर्ण फलका भागी होता है। वह फल भोग और मोक्ष देनेवाला बताया गया है।

---

* हरिजागरणं प्रातःस्नानं तुलसिसेवनम् । उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्तिके॥ (११७। ३)

ऋषि बोले—रोमहर्षणकुमार सूतजी! आपने इतिहाससहित कार्तिकमासकी विधिका भलीभाँति वर्णन किया। यह भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाला तथा अत्यन्त उत्तम फल देनेवाला है। इसका प्रभाव बड़ा ही आश्चर्यजनक है। इसलिये इसका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। परन्तु यदि कोई व्रत करनेवाला पुरुष संकटमें पड़ जाय या दुर्गम वनमें स्थित हो अथवा रोगोंसे पीड़ित हो तो उसे इस कल्याणमय कार्तिक-व्रतका अनुष्ठान कैसे करना चाहिये?

सूतजीने कहा—महर्षियो! ऐसे मनुष्यको भगवान् विष्णु अथवा शिवके मन्दिरमें केवल जागरण करना चाहिये। विष्णु और शिवके मन्दिर न मिलें तो किसी भी मन्दिरमें वह जागरण कर सकता है। यदि कोई दुर्गम वनमें स्थित हो अथवा आपत्तिमें फँस जाय तो वह अश्वत्थ वृक्षकी जड़के पास अथवा तुलसीके वृक्षोंके बीच बैठकर जागरण करे। जो पुरुष भगवान् विष्णुके समीप बैठकर श्रीविष्णुके नाम तथा चरित्रोंका गान करता है, उसे सहस्र गो-दानोंका फल मिलता है। बाजा बजानेवाला पुरुष वाजपेय यज्ञका फल पाता है और भगवान्‌के पास नृत्य करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। जो उक्त नियमोंका पालन करनेवाले मनुष्योंको धन देता है, उसे यह सब पुण्य प्राप्त होता है। उक्त नियमोंका पालन करनेवाले पुरुषोंके दर्शन और नाम सुननेसे भी उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त होता है। जो आपत्तिमें फँस जानेके कारण नहानेके लिये जल न पा सके अथवा जो रोगी होनेके कारण स्नान न कर सके, वह भगवान् विष्णुका नाम लेकर मार्जन कर ले। जो कार्तिक-व्रतके पालनमें प्रवृत्त होकर भी उसका उद्यापन करनेमें समर्थ न हो, उसे चाहिये कि अपने व्रतकी पूर्तिके लिये यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये। ब्राह्मण इस पृथ्वीपर अव्यक्तरूप श्रीविष्णुके व्यक्त स्वरूप हैं।

उनके सन्तुष्ट होनेपर भगवान् सदा सन्तुष्ट होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो स्वयं दीपदान करनेमें असमर्थ हो, वह दूसरोंका दीप जलाये अथवा हवा आदिसे उन दीपोंकी यत्नपूर्वक रक्षा करे। तुलसी-वृक्षके अभावमें वैष्णव ब्राह्मणका पूजन करे; क्योंकि भगवान् विष्णु अपने भक्तोंके हृदयमें सदा ही विराजमान रहते हैं। अथवा सब साधनोंके अभावमें व्रत करनेवाला पुरुष व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणों, गौओं तथा पीपल और वटके वृक्षोंकी सेवा करे।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने पीपल और वटको गौ तथा ब्राह्मणके समान कैसे बता दिया? वे दोनों अन्य सब वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक पूज्य क्यों माने गये?

सूतजी बोले—महर्षियो! पीपलके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराजते हैं। इसी प्रकार वट भगवान् शङ्करका और पलाश ब्रह्माजीका स्वरूप है। इन तीनोंका दर्शन, पूजन और सेवन पापहारी माना गया है। दुःख, आपत्ति, व्याधि और दुष्टोंके नाशमें भी उसको कारण बताया गया है।

कार्तिकमासका माहात्म्य और उसमें पालन करने योग्य नियम

सत्यभामाने कहा—प्रभो! कार्तिकमास सब मासोंमें श्रेष्ठ माना गया है। मैंने उसके माहात्म्यको विस्तारपूर्वक नहीं सुना। कृपया उसीका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सत्यभामे! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। पूर्वकालमें महात्मा सूतने शौनक मुनिसे आदरपूर्वक कार्तिक-व्रतका वर्णन किया था। वही प्रसङ्ग मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

सूतजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ शौनकजी! पूर्वकालमें कार्तिकेयजीके पूछनेपर महादेवजीने जिसका वर्णन किया था, उसको आप श्रवण कीजिये।

कार्तिकेयजी बोले—पिताजी! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। मुझे कार्तिकमासके स्नानकी विधि बताइये, जिससे मनुष्य दु:खरूपी समुद्रसे पार हो जाते हैं। साथ ही तीर्थके जलका माहात्म्य और माघस्नानका फल भी बताइये।

महादेवजीने कहा—एक ओर सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त दान, दक्षिणाओंसहित यज्ञ, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, हिमालय, अक्रूरतीर्थ, काशी और शूकरक्षेत्रमें निवास तथा दूसरी ओर केवल कार्तिकमास हो तो वही भगवान् केशवको सर्वदा प्रिय है। जिसके हाथ, पैर, वाणी और मन वशमें हों तथा जिसमें विद्या, तप और कीर्ति विद्यमान हों, वही तीर्थके पूर्ण फलको प्राप्त करता है। श्रद्धारहित, नास्तिक, संशयालु और कोरी तर्कबुद्धिका सहारा लेनेवाले मनुष्य तीर्थसेवनके फलभागी नहीं होते। जो ब्राह्मण सबेरे उठकर सदा प्रात:स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमात्माको प्राप्त होता है। षडानन! स्नानका महत्त्व जाननेवाले पुरुषोंने चार प्रकारके स्नान बतलाये हैं—वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य।

यह सुनकर सत्यभामा बोलीं—प्रभो! मुझे चारों स्नानोंके लक्षण बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! गोधूलिद्वारा किया हुआ स्नान वायव्य कहलाता है, सागर आदि जलाशयोंमें किये हुए स्नानको वारुण कहते हैं, **'आपो हि ष्ठा मयो'** आदि ब्राह्मण-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो मार्जन किया जाता है उसका नाम ब्राह्म है तथा बरसते हुए मेघके जल और सूर्यकी किरणोंसे शरीरकी शुद्धि करना दिव्य स्नान

माना गया है। सब प्रकारके स्नानोंमें वारुणस्नान श्रेष्ठ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करें। परन्तु शूद्र और स्त्रियोंके लिये बिना मन्त्रके ही स्नानका विधान है। बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्री और नपुंसक—सब लोग कार्तिक और माघमें प्रातःस्नानकी प्रशंसा करते हैं। कार्तिकमें प्रातःकाल स्नान करनेवाले लोग मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं।

कार्तिकेयजी बोले—पिताजी! अन्य धर्मोंका भी वर्णन कीजिये, जिनका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य अपने समस्त पाप धोकर देवता बन जाता है।

महादेवजीने कहा—बेटा! कार्तिकमासको उपस्थित देख जो मनुष्य दूसरेका अन्न त्याग देता है, वह प्रतिदिन कृच्छ्रव्रतका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें तेल, मधु, काँसेके बर्तनमें भोजन और मैथुनका विशेषरूपसे परित्याग करना चाहिये। एक बार भी मांस भक्षण करनेसे मनुष्य राक्षसकी योनिमें जन्म पाता है और साठ हजार वर्षोंतक विष्ठामें डालकर सड़ाया जाता है। उससे छुटकारा पानेपर वह पापी विष्ठा खानेवाला ग्राम-शूकर होता है। कार्तिकमासमें शास्त्रविहित भोजनका नियम करनेपर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुका परमधाम ही मोक्ष है। कार्तिकके समान कोई मास नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है, वेदके तुल्य कोई शास्त्र नहीं है, गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, सत्यके समान सदाचार, सत्ययुगके समान युग, रसनाके तुल्य तृप्तिका साधन, दानके सदृश सुख, धर्मके समान मित्र और नेत्रके समान कोई ज्योति नहीं है।*

---

* .... । प्रवृत्तानां तु भक्षाणां कार्तिके नियमे कृते ॥
अवश्यं प्राप्यते मोक्षो विष्णोस्तत्परमं पदम् । न कार्तिकसमो मासो न देवः केशवात्परः ॥
न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्। न सत्येन समं वृत्तं न कृतेन समं युगम्॥

स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये समुद्रगामिनी पवित्र नदी प्रायः दुर्लभ होती है। कुलके अनुरूप उत्तम शीलवाली कन्या, कुलीन और शीलवान् दम्पति, जन्मदायिनी माता, विशेषतः पिता, साधु पुरुषोंके सम्मानका अवसर, धार्मिक पुत्र, द्वारकाका निवास, भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन, गोमतीका स्नान और कार्तिकका व्रत—ये सब मनुष्यके लिये प्रायः दुर्लभ हैं। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणकालमें ब्राह्मणोंको पृथ्वी दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह कार्तिकमें भूमिपर शयन करनेवाले पुरुषको स्वतः प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। कम्बल, नाना प्रकारके रत्न और वस्त्र दान करे। ओढ़नेके साथ ही बिछौना भी दे। तुम्हें कार्तिकमासमें जूते और छातेका भी दान करना चाहिये। कार्तिकमासमें जो मनुष्य प्रतिदिन पत्तलमें भोजन करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। उसे सम्पूर्ण कामनाओं तथा समस्त तीर्थोंका फल प्राप्त होता है। पलाशके पत्तेपर भोजन करनेसे मनुष्य कभी नरक नहीं देखता; किन्तु वह पलाशके बिचले पत्रका अवश्य त्याग कर दे।

कार्तिकमें तिलका दान, नदीका स्नान, सदा साधुपुरुषोंका सेवन और पलाशके पत्तोंमें भोजन सदा मोक्ष देनेवाला है। कार्तिकके महीनेमें मौन-व्रतका पालन, पलाशके पत्तेमें भोजन, तिलमिश्रित जलसे स्नान, निरन्तर क्षमाका आश्रय और पृथ्वीपर शयन करनेवाला पुरुष युग-युगके उपार्जित पापोंका नाश कर डालता है। जो कार्तिकमासमें भगवान् विष्णुके सामने उषाकालतक जागरण करता है, उसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। पितृपक्षमें अन्नदान करनेसे तथा ज्येष्ठ और

न तृप्ती रसनातुल्या न दानसदृशं सुखम्। न धर्मसदृशं मित्रं न ज्योतिश्चक्षुषा समम्॥
(१२०। २२—२५)

आषाढमासमें जल देनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, वह कार्तिकमें दूसरोंका दीपक जलानेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। जो बुद्धिमान् कार्तिकमें मन, वाणी और क्रियाद्वारा पुष्कर-तीर्थका स्मरण करता है, उसे लाखों-करोड़ोंगुना पुण्य होता है। माघमासमें प्रयाग, कार्तिकमें पुष्कर और वैशाखमासमें अवन्तीपुरी (उज्जैन)—ये एक युगतक उपार्जित किये हुए पापोंका नाश कर डालते हैं। कार्तिकेय! संसारमें विशेषतः कलियुगमें वे ही मनुष्य धन्य हैं जो सदा पितरोंके उद्धारके लिये श्रीहरिका सेवन करते हैं। बेटा! बहुत-से पिण्ड देने और गयामें श्राद्ध आदि करनेकी क्या आवश्यकता है। वे मनुष्य तो हरिभजनके ही प्रभावसे पितरोंका नरकसे उद्धार कर देते हैं। यदि पितरोंके उद्देश्यसे दूध आदिके द्वारा भगवान् विष्णुको स्नान कराया जाय तो वे पितर स्वर्गमें पहुँचकर कोटि कल्पोंतक देवताओंके साथ निवास करते हैं। जो कमलके एक फूलसे भी देवेश्वर भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन करता है, वह एक करोड़ वर्षतकके पापोंका नाश कर देता है। देवताओंके स्वामी भगवान् विष्णु कमलके एक पुष्पसे भी पूजित और अभिवन्दित होनेपर एक हजार सात सौ अपराध क्षमा कर देते हैं। षडानन! जो मुखमें, मस्तकपर तथा शरीरमें भगवान्‌की प्रसादभूता तुलसीको प्रसन्नतापूर्वक धारण करता है, उसे कलियुग नहीं छूता। भगवान् विष्णुको निवेदन किये हुए प्रसादसे जिसके शरीरका स्पर्श होता है, उसके पाप और व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। शङ्खका जल, श्रीहरिको भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ नैवेद्य, चरणोदक, चन्दन तथा प्रसादस्वरूप धूप—ये ब्रह्महत्याका भी पाप दूर करनेवाले हैं।

शूकरक्षेत्रका माहात्म्य तथा मासोपवास-व्रतकी विधिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—भक्तप्रवर कार्तिकेय! अब माघस्नानका माहात्म्य सुनो। महामते! इस संसारमें तुम्हारे समान विष्णु-भक्त पुरुष नहीं हैं। चक्रतीर्थमें श्रीहरिका और मथुरामें श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही माघमासमें केवल स्नान करनेसे मिल जाता है। जो जितेन्द्रिय, शान्तचित्त और सदाचारयुक्त होकर माघमासमें स्नान करता है वह फिर कभी संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता।

इतनी कथा सुनाकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सत्यभामा! अब मैं तुम्हारे सामने शूकरक्षेत्रके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, जिसके विज्ञानमात्रसे मेरा सान्निध्य प्राप्त होता है। पाँच योजन विस्तृत शूकरक्षेत्र मेरा मन्दिर (निवासस्थान) है। देवि! जो इसमें निवास करता है, वह गदहा हो तो भी चतुर्भुजस्वरूपको प्राप्त होता है। तीन हजार तीन सौ तीन हाथ मेरे मन्दिरका परिमाण माना गया है। देवि! जो अन्य स्थानोंमें साठ हजार वर्षोंतक तपस्या करता है, वह मनुष्य शूकरक्षेत्रमें आधे पहरतक तप करनेपर ही उतनी तपस्याका फल प्राप्त कर लेता है। कुरुक्षेत्रके सन्निहति[१] नामक तीर्थमें सूर्यग्रहणके समय तुला-पुरुषके दानसे जो फल बताया गया है, वह काशीमें दस गुना, त्रिवेणीमें सौगुना और गङ्गासागर-संगममें सहस्रगुना कहा गया है; किन्तु मेरे निवासभूत शूकरक्षेत्रमें उसका फल अनन्तगुना समझना चाहिये। भामिनि! अन्य तीर्थोंमें उत्तम विधानके साथ जो लाखों दान दिये जाते हैं, शूकरक्षेत्रमें एक ही दानसे उनके समान फल प्राप्त हो जाता है। शूकरक्षेत्र, त्रिवेणी और गङ्गासागर-संगममें

१- महाभारतयुद्धका स्थान ही 'सन्निहति' कहलाता है। इसीको कहीं-कहीं 'विनशन-तीर्थ' भी कहा गया है।

एक बार ही स्नान करनेसे मनुष्यकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। पूर्वकालमें राजा अलर्कने शूकरक्षेत्रका माहात्म्य श्रवण करके सातों द्वीपोंसहित पृथ्वीका राज्य प्राप्त किया था।

कार्तिकेयने कहा—भगवन्! मैं व्रतोंमें उत्तम मासोपवास-व्रतका वर्णन सुनना चाहता हूँ। साथ ही उसकी विधि एवं यथोचित फलको भी श्रवण करना चाहता हूँ।

महादेवजी बोले—बेटा! तुम्हारा विचार बड़ा उत्तम है। तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब बताता हूँ। जैसे देवताओंमें भगवान् विष्णु, तपनेवालोंमें सूर्य, पर्वतोंमें मेरु, पक्षियोंमें गरुड़, तीर्थोंमें गङ्गा तथा प्रजाओंमें वैश्य श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब व्रतोंमें मासोपवास-व्रत श्रेष्ठ माना गया है। सम्पूर्ण व्रतोंसे, समस्त तीर्थोंसे तथा सब प्रकारके दानोंसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब मासोपवास करनेवालेको मिल जाता है। वैष्णवयज्ञके उद्देश्यसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर मासोपवास-व्रत करना चाहिये। शास्त्रोक्त जितने भी वैष्णवव्रत हैं, उन सबको तथा द्वादशीके पवित्र व्रतको करनेके पश्चात् मासोपवास-व्रत करना उचित है। अतिकृच्छ्र, पराक और चान्द्रायण-व्रतोंका अनुष्ठान करके गुरु और ब्राह्मणकी आज्ञासे मासोपवास-व्रत करे। आश्विनमासके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास करके तीस दिनोंके लिये इस व्रतको ग्रहण करे। जो मनुष्य भगवान् वासुदेवकी पूजा करके कार्तिकमासभर उपवास करता है, वह मोक्षफलका भागी होता है। भगवान्‌के मन्दिरमें जाकर तीनों समय भक्तिपूर्वक सुन्दर मालती, नील-कमल, पद्म, सुगन्धित कमल, केशर, खस, कपूर, उत्तम चन्दन, नैवेद्य और धूप-दीप आदिसे श्रीजनार्दनका पूजन करे। मन, वाणी और क्रियाद्वारा श्रीगरुडध्वजकी आराधनामें लगा रहे। स्त्री, पुरुष, विधवा—जो कोई भी इस व्रतको करे, पूर्ण

भक्तिके साथ इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए दिन-रात श्रीविष्णुके नामोंका कीर्तन करता रहे। भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी स्तुति करे। झूठ न बोले। सम्पूर्ण जीवोंपर दया करे। अन्तःकरणकी वृत्तियोंको अशान्त न होने दे। हिंसा त्याग दे। सोया हो या बैठा, श्रीवासुदेवका कीर्तन किया करे। अन्नका स्मरण, अवलोकन, सूँघना, स्वाद लेना, चर्चा करना तथा ग्रासको मुँहमें लेना—ये सभी निषिद्ध हैं। व्रतमें स्थित मनुष्य शरीरमें उबटन लगाना, सिरमें तेलकी मालिश कराना, पान खाना और चन्दन लगाना छोड़ दे तथा अन्यान्य निषिद्ध वस्तुओंका भी त्याग करे। व्रत करनेवाला पुरुष शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाले व्यक्तिका स्पर्श न करे। उससे वार्तालाप भी न करे। पुरुष, सौभाग्यवती स्त्री अथवा विधवा नारी शास्त्रोक्त विधिसे एक मासतक उपवास करके भगवान् वासुदेवका पूजन करे। यह व्रत गिने-गिनाये तीस दिनोंका होता है, इससे अधिक या कम दिनोंका नहीं। मनको संयममें रखनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष एक मासतक उपवासके नियमको पूरा करके द्वादशी तिथिको भगवान् गरुडध्वजका पूजन करे। फूल, माला, गन्ध, धूप, चन्दन, वस्त्र, आभूषण और वाद्य आदिके द्वारा भगवान् विष्णुको संतुष्ट करे। चन्दनमिश्रित तीर्थके जलसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌को स्नान कराये। फिर उनके अङ्गोंमें चन्दनका लेप करके गन्ध और पुष्पोंसे शृङ्गार करे। फिर वस्त्र आदिका दान करके उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराये, उन्हें दक्षिणा दे और प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा-याचना करे। इस प्रकार मासोपवासपूर्वक जनार्दनकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे मनुष्य श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मण्डपमें उपस्थित ब्राह्मणोंसे बारम्बार इस प्रकार कहना चाहिये— 'द्विजवरो! इस व्रतमें जो कोई भी कार्य मन्त्रहीन, क्रियाहीन और

सब प्रकारके साधनों एवं विधियोंसे हीन हुआ हो वह सब आप लोगोंके वचन और प्रसादसे परिपूर्ण हो जाय।' कार्तिकेय! इस प्रकार मैंने तुमसे मासोपवासकी विधिका यथावत् वर्णन किया है।

शालग्रामशिलाके पूजनका माहात्म्य

कार्तिकेयने कहा—भगवन्! आप योगियोंमें श्रेष्ठ हैं। मैंने आपके मुखसे सब धर्मोंका श्रवण किया। प्रभो! अब शालग्राम-पूजनकी विधिका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

महादेवजी बोले—महामते! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। वत्स! तुम जो कुछ पूछ रहे हो, उसका उत्तर देता हूँ; सुनो। शालग्रामशिलामें सदा चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी लीन रहती है। जो शालग्रामशिलाका दर्शन करता, उसे मस्तक झुकाता, स्नान कराता और पूजन करता है, वह कोटि यज्ञोंके समान पुण्य तथा कोटि गोदानोंका फल पाता है। बेटा! जो पुरुष सर्वदा भगवान् विष्णुकी शालग्रामशिलाका चरणामृत पान करता है, उसने गर्भवासके भयङ्कर कष्टका नाश कर दिया। जो सदा भोगोंमें आसक्त और भक्तिभावसे हीन है, वह भी शालग्रामशिलाका पूजन करके भगवत्स्वरूप हो जाता है। शालग्रामशिलाका स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजन और नमस्कार करनेपर कोटि-कोटि ब्रह्महत्याओंका पाप नष्ट हो जाता है। शालग्रामशिलाका दर्शन करनेसे अनेक पाप दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्रामशिलाकी पूजा करता है, उसे न तो यमराजका भय होता है और न मरने या जन्म लेनेका ही। जिन मनुष्योंने भक्तिभावसे शालग्रामको नमस्कारमात्र कर लिया, उनको तथा मेरे भक्तोंको फिर मनुष्य-योनिकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। वे तो मुक्तिके

अधिकारी हैं। जो मेरी भक्तिके घमण्डमें आकर मेरे प्रभु भगवान् वासुदेवको नमस्कार नहीं करते, वे पापसे मोहित हैं; उन्हें मेरा भक्त नहीं समझना चाहिये।

करोड़ों कमल-पुष्पोंसे मेरी पूजा करनेपर जो फल होता है, वही शालग्रामशिलाके पूजनसे कोटिगुना होकर मिलता है, जिन लोगोंने मर्त्यलोकमें आकर शालग्रामशिलाका पूजन नहीं किया, उन्होंने न तो कभी मेरा पूजन किया और न नमस्कार ही किया। जो शालग्रामशिलाके अग्रभागमें मेरा पूजन करता है, उसने मानो लगातार इक्कीस युगोंतक मेरी पूजा कर ली। जो मेरा भक्त होकर वैष्णव पुरुषका पूजन नहीं करता वह मुझसे द्वेष रखनेवाला है। उसे तबतकके लिये नरकमें रहना पड़ता है जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु समाप्त नहीं हो जाती।

जिसके घरमें कोई वानप्रस्थी, वैष्णव अथवा संन्यासी दो घड़ी भी विश्राम करता है, उसके पितामह आठ युगोंतक अमृत भोजन करते हैं। शालग्रामशिलासे प्रकट हुए लिङ्गोंका एक बार भी पूजन करनेपर मनुष्य योग और सांख्यसे रहित होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। मेरे कोटि-कोटि लिङ्गोंका दर्शन, पूजन और स्तवन करनेसे जो फल मिलता है, वह एक ही शालग्रामशिलाके पूजनसे प्राप्त हो जाता है।

जो वैष्णव प्रतिदिन बारह शालग्रामशिलाओंका पूजन करता है, उसके पुण्यका वर्णन सुनो। गङ्गाजीके तटपर करोड़ों शिवलिङ्गोंका पूजन करनेसे तथा लगातार आठ युगोंतक काशीपुरीमें रहनेसे जो पुण्य होता है, वह उस वैष्णवको एक ही दिनमें प्राप्त हो जाता है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता—जो वैष्णव मनुष्य शालग्रामशिलाका पूजन करता है, उसके पुण्यकी गणना करनेमें मैं तथा ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं; इसलिये बेटा! मेरे भक्तोंको उचित है कि वे मेरी

प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक शालग्रामशिलाका भी पूजन करें। जहाँ शालग्रामशिलारूपी भगवान् केशव विराजमान हैं, वहीं सम्पूर्ण देवता, असुर, यक्ष तथा चौदहों भुवन मौजूद हैं। अन्य देवताओंका करोड़ों बार कीर्तन करनेसे जो फल होता है, वह भगवान् केशवका एक बार कीर्तन करनेसे ही मिल जाता है। अत: कलियुगमें श्रीहरिका कीर्तन ही सर्वोत्तम पुण्य है।* श्रीहरिका चरणोदक पान करनेसे ही समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। फिर उनके लिये दान, उपवास और चान्द्रायण-व्रत करनेकी क्या आवश्यकता है।

बेटा स्कन्द! अन्य सभी शुभ कर्मोंके फलोंका माप है; किन्तु शालग्रामशिलाके पूजनसे जो फल मिलता है, उसका कोई माप नहीं। जो विष्णुभक्त ब्राह्मणको शालग्रामशिलाका दान करता है, उसने मानो सौ यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन कर लिया। जो शालग्रामशिलाके जलसे अपना अभिषेक करता है, उसने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया और समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ले ली। जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक-एक सेर तिलका दान करता है, वह शालग्रामशिलाके पूजनमात्रसे उस फलको प्राप्त कर लेता है। शालग्रामशिलाको अर्पण किया हुआ थोड़ा-सा पत्र, पुष्प, फल, जल, मूल और दूर्वादल भी मेरु पर्वतके समान महान् फल देनेवाला होता है।

जहाँ शालग्रामशिला होती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। वहाँ किया हुआ स्नान और दान काशीसे सौगुना अधिक फल देनेवाला है। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषारण्य—ये सभी तीर्थ वहाँ मौजूद रहते हैं; अत: वहाँ उन तीर्थोंकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक पुण्य होता है। काशीमें मिलनेवाला मोक्षरूपी महान् फल

* सुराणां कीर्तनैः सर्वैः कोटिभिश्च फलं कृतम्। तत्फलं कीर्तनादेव केशवे सुकृतं कलौ॥ (१२२। ३६-३७)

भी वहाँ सुलभ होता है। जहाँ शालग्रामशिलासे प्रकट होनेवाले भगवान् शालग्राम तथा द्वारकासे प्रकट होनेवाले भगवान् गोमतीचक्र हों तथा जहाँ इन दोनोंका संगम हो गया हो वहाँ निःसन्देह मोक्षकी प्राप्ति होती है। शालग्रामशिलाके पूजनमें मन्त्र, जप, भावना, स्तुति अथवा किसी विशेष प्रकारके आचारका बन्धन नहीं है। शालग्रामशिलाके सम्मुख विशेषतः कार्तिकमासमें आदरपूर्वक स्वस्तिकका चिह्न बनाकर मनुष्य अपनी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो भगवान् केशवके समक्ष मिट्टी अथवा गेरू आदिसे छोटा-सा भी मण्डल (चौक) बनाता है, वह कोटि कल्पोंतक दिव्यलोकमें निवास करता है। श्रीहरिके मन्दिरको सजानेसे अगम्यागमन तथा अभक्ष्यभक्षण-जैसे पाप भी नष्ट हो जाते हैं। जो नारी प्रतिदिन भगवान् विष्णुके सामने चौक पूरती है, वह सात जन्मोंतक कभी विधवा नहीं होती।

भगवत्पूजन, दीपदान, यमतर्पण, दीपावली-कृत्य, गोवर्धनपूजा और यमद्वितीयाके दिन करने योग्य कृत्योंका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—जो प्रतिदिन मालतीसे भगवान् गरुड़ध्वजका पूजन करता है, वह जन्मके दुःखों और बुढ़ापेके रोगोंसे छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है। जिसने कार्तिकमें मालतीकी मालासे भगवान् विष्णुकी पूजा की है, उसके पापोंको भगवान् श्रीकृष्ण धो डालते हैं। चन्दन, कपूर, अरगजा, केशर, केवड़ा और दीपदान भगवान् केशवको सदा ही प्रिय हैं। कमलका पुष्प, तुलसीदल, मालती, अगस्त्यका फूल और दीपदान—ये पाँच वस्तुएँ कार्तिकमें भगवान्के

लिये परम प्रिय मानी गयी हैं। कार्तिकेय! केवड़ेके फूलोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करके मनुष्य उनके परम पवित्र एवं कल्याणमय धामको प्राप्त होता है। जो अगस्त्यके फूलोंसे जनार्दनका पूजन करता है, उसके दर्शनसे नरककी आग बुझ जाती है। जैसे कौस्तुभमणि और वनमालासे भगवान्को प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार कार्तिकमें तुलसीदलसे वे अधिक सन्तुष्ट होते हैं।

कार्तिकेय! अब कार्तिकमें दिये जानेवाले दीपका माहात्म्य सुनो। मनुष्यके पितर अन्य पितृगणोंके साथ सदा इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि क्या हमारे कुलमें भी कोई ऐसा उत्तम पितृभक्त पुत्र उत्पन्न होगा जो कार्तिकमें दीपदान करके श्रीकेशवको सन्तुष्ट कर सके। स्कन्द! कार्तिकमें घी अथवा तिलके तेलसे जिसका दीपक जलता रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञसे क्या लेना है। जिसने कार्तिकमें भगवान् केशवके समक्ष दीपदान किया है, उसने सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया और समस्त तीर्थोंमें गोता लगा लिया। बेटा! विशेषतः कृष्णपक्षमें पाँच दिन बड़े पवित्र हैं। (कार्तिक कृष्णा १३ से कार्तिक शुक्ला २ तक) उनमें जो कुछ भी दान किया जाता है, वह सब अक्षय एवं सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है। लीलावती वेश्या दूसरेके रखे हुए दीपको ही जलाकर शुद्ध हो अक्षय स्वर्गको चली गयी। इसलिये रात्रिमें सूर्यास्त हो जानेपर घरमें, गोशालामें, देववृक्षके नीचे तथा मन्दिरोंमें दीपक जलाकर रखना चाहिये। देवताओंके मन्दिरोंमें, श्मशानोंमें और नदियोंके तटपर भी अपने कल्याणके लिये घृत आदिसे पाँच दिनोंतक दीपक जलाने चाहिये। ऐसा करनेसे जिनके श्राद्ध और तर्पण नहीं हुए हैं, वे पापी पितर भी दीपदानके पुण्यसे परम मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—भामिनि! कार्तिकके कृष्णपक्षकी

त्रयोदशीको घरसे बाहर यमराजके लिये दीप देना चाहिये। इससे दुर्मृत्युका नाश होता है। दीप देते समय इस प्रकार कहना चाहिये—'मृत्यु', पाशधारी काल और अपनी पत्नीके साथ सूर्यनन्दन यमराज त्रयोदशीको दीप देनेसे प्रसन्न हों।* कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको चन्द्रोदयके समय नरकसे डरनेवाले मनुष्योंको अवश्य स्नान करना चाहिये। जो चतुर्दशीको प्रातःकाल स्नान करता है, उसे यमलोकका दर्शन नहीं करना पड़ता। अपामार्ग (ओंगा या चिचड़ा), तुम्बी (लौकी), प्रपुन्नाट (चकवड़) और कट्फल (कायफल)—इनको स्नानके बीचमें मस्तकपर घुमाना चाहिये। इससे नरकके भयका नाश होता है। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे अपामार्ग! मैं हराईके ढेले, काँटे और पत्तोंसहित तुम्हें बार-बार मस्तकपर घुमा रहा हूँ। मेरे पाप हर लो।'† यों कहकर अपामार्ग और चकवड़को मस्तकपर घुमाये। तत्पश्चात् यमराजके नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे। वे नाम-मन्त्र इस प्रकार हैं—'**यमाय नमः, धर्मराजाय नमः, मृत्यवे नमः, अन्तकाय नमः, वैवस्वताय नमः, कालाय नमः, सर्वभूतक्षयाय नमः, औदुम्बराय नमः, दध्नाय नमः, नीलाय नमः, परमेष्ठिने नमः, वृकोदराय नमः, चित्राय नमः, चित्रगुप्ताय नमः।**'

देवताओंका पूजन करके दीपदान करना चाहिये। इसके बाद रात्रिके आरम्भमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर मनोहर दीप देने चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके मन्दिरोंमें, गुप्त गृहोंमें, देववृक्षोंके नीचे, सभाभवनमें, नदियोंके किनारे, चहारदीवारीपर, बगीचेमें' बावलीके तटपर, गली-

---

* मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति॥ (१२४। ५)

† सीतालोष्टसमायुक्तः सकण्टकदलान्वितः। हरपापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥ (१२४। ११)

कूचोंमें, गृहोद्यानमें तथा एकान्त अश्वशालाओं एवं गजशालाओंमें भी दीप जलाने चाहिये। इस प्रकार रात व्यतीत होनेपर अमावास्याको प्रातःकाल स्नान करे और भक्तिपूर्वक देवताओं तथा पितरोंका पूजन और उन्हें प्रणाम करके पार्वण श्राद्ध करे; फिर दही, दूध , घी आदि नाना प्रकारके भोज्य पदार्थोंद्वारा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे। तदनन्तर भगवान्‌के जागनेसे पहले स्त्रियोंके द्वारा लक्ष्मीजीको जगाये। जो प्रबोधकाल (ब्राह्ममुहूर्त)-में लक्ष्मीजीको जगाकर उनका पूजन करता है, उसे धन-सम्पत्तिकी कमी नहीं होती। तत्पश्चात् प्रातःकाल (कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको) गोवर्धनका पूजन करना चाहिये। उस समय गौओं तथा बैलोंको आभूषणोंसे सजाना चाहिये। उस दिन उनसे सवारीका काम नहीं लेना चाहिये तथा गायोंको दुहना भी नहीं चाहिये। पूजनके पश्चात् गोवर्धनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक॥
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय ,गवां कोटिप्रदो भव।
या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता॥
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु।
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(१२४। ३१—३३)

'पृथ्वीको धारण करनेवाले गोवर्धन! आप गोकुलके रक्षक हैं। भगवान् श्रीकृष्णने आपको अपनी भुजाओंपर उठाया था। आप मुझे कोटि-कोटि गौएँ प्रदान करें। लोकपालोंकी जो लक्ष्मी धेनुरूपमें स्थित हैं और यज्ञके लिये घृत प्रदान करती हैं, वे मेरे पापको दूर करें। मेरे आगे गौएँ रहें, मेरे पीछे भी गौएँ रहें, मेरे हृदयमें गौओंका निवास हो तथा मैं भी गौओंके बीचमें निवास करूँ।'

कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वितीयाको पूर्वाह्णमें यमकी पूजा करे। यमुनामें स्नान करके मनुष्य यमलोकको नहीं देखता। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको पूर्वकालमें यमुनाने यमराजको अपने घरपर सत्कारपूर्वक भोजन कराया था। उस दिन नारकी जीवोंको यातनासे छुटकारा मिला और उन्हें तृप्त किया गया। वे पापमुक्त होकर सब बन्धनोंसे छुटकारा पा गये और सब-के-सब यहाँ अपनी इच्छाके अनुसार संतोषपूर्वक रहे। उन सबने मिलकर एक महान् उत्सव मनाया, जो यमलोकके राज्यको सुख पहुँचानेवाला था। इसीलिये यह तिथि तीनों लोकोंमें यमद्वितीयाके नामसे विख्यात हुई; अतः विद्वान् पुरुषोंको उस दिन अपने घर भोजन नहीं करना चाहिये। वे बहिनके घर जाकर उसीके हाथसे मिले हुए अन्नको, जो पुष्टिवर्धक है, स्नेहपूर्वक भोजन करें तथा जितनी बहिनें हों, उन सबको पूजा और सत्कारके साथ विधिपूर्वक सुवर्ण, आभूषण एवं वस्त्र दें। सगी बहिनके हाथका अन्न भोजन करना उत्तम माना गया है। उसके अभावमें किसी भी बहिनके हाथका अन्न भोजन करना चाहिये। वह बलको बढ़ानेवाला है। जो लोग उस दिन सुवासिनी बहिनोंको वस्त्र-दान आदिसे सन्तुष्ट करते हैं, उन्हें एक सालतक कलह एवं शत्रुके भयका सामना नहीं करना पड़ता। यह प्रसङ्ग धन, यश, आयु, धर्म, काम एवं अर्थकी सिद्धि करनेवाला है।

प्रबोधिनी एकादशी और उसके जागरणका महत्त्व तथा भीष्मपञ्चक-व्रतकी विधि एवं महिमा

महादेवजी कहते हैं—सुरश्रेष्ठ कार्तिकेय! अब प्रबोधिनी एकादशीका माहात्म्य सुनो। यह पापका नाशक, पुण्यकी वृद्धि

करनेवाला तथा तत्त्वचिन्तनपरायण पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे लेकर सरोवरोंतक जितने तीर्थ हैं, वे भी तभीतक गरजते हैं जबतक कि कार्तिकमें श्रीहरिकी प्रबोधिनी तिथि नहीं आती। प्रबोधिनीको एक ही उपवाससे सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल मिल जाता है। इस चराचर त्रिलोकीमें जो वस्तु अत्यन्त दुर्लभ मानी गयी है, उसे भी माँगनेपर हरिबोधिनी एकादशी प्रदान करती है। यदि हरिबोधिनी एकादशीको उपवास किया जाय तो वह अनायास ही ऐश्वर्य, सन्तान, ज्ञान, राज्य और सुख-सम्पत्ति प्रदान करती है। मनुष्यके किये हुए मेरुपर्वतके समान बड़े-बड़े पापोंको भी हरिबोधिनी एकादशी एक ही उपवाससे भस्म कर डालती है। जो प्रबोधिनी एकादशीको स्वभावसे ही विधिपूर्वक उपवास करता है, वह शास्त्रोक्त फलका भागी होता है। प्रबोधिनी एकादशीको रात्रिमें जागरण करनेसे पहलेके हजारों जन्मोंकी की हुई पापराशि रूईके ढेरकी भाँति भस्म हो जाती है।

रात्रिमें जागरण करते समय भगवत्सम्बन्धी गीत, वाद्य, नृत्य और पुराणोंके पाठकी भी व्यवस्था करनी चाहिये। धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध, चन्दन, फल और अर्घ्य आदिसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। मनमें श्रद्धा रखकर दान देना और इन्द्रियोंको संयममें रखना चाहिये। सत्यभाषण, निद्राका अभाव, प्रसन्नता, शुभ कर्ममें प्रवृत्ति, मनमें आश्चर्य और उत्साह, आलस्य आदिका त्याग, भगवान्‌की परिक्रमा तथा नमस्कार—इन बातोंका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। महाभाग! प्रत्येक पहरमें उत्साह और उमङ्गके साथ भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आरती उतारनी चाहिये। जो पुरुष भगवान्‌के समीप एकाग्रचित्त होकर उपर्युक्त गुणोंसे युक्त जागरण करता है, वह पुनः इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेता। जो धनकी कृपणता छोड़कर इस

प्रकार भक्तिभावसे एकादशीको जागरण करता है, वह परमात्मामें लीन हो जाता है। जो कार्तिकमें पुरुषसूक्तके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिका पूजन करता है, उसके द्वारा करोड़ों वर्षोंतक भगवान्‌की पूजा सम्पन्न हो जाती है। जो मनुष्य पाञ्चरात्रमें बतायी हुई यथार्थ विधिके अनुसार कार्तिकमें भगवान्‌का पूजन करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो कार्तिकमें '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रके द्वारा श्रीहरिकी अर्चना करता है, वह नरकके दुःखोंसे छुटकारा पाकर अनामय पदको प्राप्त होता है। जो कार्तिकमें श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा गजेन्द्रमोक्षका पाठ करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। उसके कुलमें जो सैकड़ों, हजारों पुरुष उत्पन्न हो चुके हैं, वे सभी श्रीविष्णुधामको प्राप्त होते हैं। अतः एकादशीको जागरण अवश्य करना चाहिये। जो कार्तिकमें रात्रिके पिछले पहरमें भगवान्‌के सामने स्तोत्रगान करता है, वह अपने पितरोंके साथ श्वेतद्वीपमें निवास करता है। जो मनुष्य कार्तिकशुक्लपक्षमें एकादशीका व्रत पूर्ण करके प्रातःकाल सुन्दर कलश दान करता है, वह श्रीहरिके परमधामको प्राप्त होता है।

व्रतधारियोंमें श्रेष्ठ कार्तिकेय! अब मैं तुम्हें महान् पुण्यदायक व्रत बताता हूँ। यह व्रत कार्तिकके अन्तिम पाँच दिनोंमें किया जाता है। इसे भीष्मजीने भगवान् वासुदेवसे प्राप्त किया था, इसलिये यह व्रत भीष्मपञ्चक नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् केशवके सिवा दूसरा कौन ऐसा है, जो इस व्रतके गुणोंका यथावत् वर्णन कर सके। वसिष्ठ, भृगु और गर्ग आदि मुनीश्वरोंने सत्ययुगके आदिमें कार्तिकके शुक्लपक्षमें इस पुरातन धर्मका अनुष्ठान किया था। राजा अम्बरीषने भी त्रेता आदि युगोंमें इस व्रतका पालन किया था। ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्यपालन, जप तथा हवन-कर्म आदिके द्वारा और क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-शौच आदिके पालनपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान किया है। सत्यहीन

मूढ़ मनुष्योंके लिये इस व्रतका अनुष्ठान असम्भव है। जो इस व्रतको पूर्ण कर लेता है, उसने मानो सब कुछ कर लिया।

कार्तिकके शुक्लपक्षमें एकादशीको विधिपूर्वक स्नान करके पाँच दिनोंका व्रत ग्रहण करे। व्रती पुरुष प्रातः-स्नानके बाद मध्याह्नके समय भी नदी, झरने या पोखरेपर जाकर शरीरमें गोबर लगाकर विशेषरूपसे स्नान करे। फिर चावल, जौ और तिलोंके द्वारा क्रमशः देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। मौनभावसे स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहन दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करे। ब्राह्मणको पञ्चरत्न दान दे। लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका प्रतिदिन पूजन करे। इस पञ्चकव्रतके अनुष्ठानसे मनुष्य वर्षभरके सम्पूर्ण व्रतोंका फल प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे भीष्मको जलदान देता और अर्घ्यके द्वारा उनका पूजन (सत्कार) करता है, वह मोक्षका भागी होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च।
अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥

(१२५। ४३-४४)

'जिनका गोत्र वैयाघ्रपद्य और प्रवर सांकृत्य है, उन सन्तानरहित राजर्षि भीष्मके लिये यह जल समर्पित है। जो वसुओंके अवतार तथा राजा शन्तनुके पुत्र हैं, उन आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मको मैं अर्घ्य दे रहा हूँ।'

तत्पश्चात् सब पापोंका हरण करनेवाले श्रीहरिका पूजन करे। उसके बाद प्रयत्नपूर्वक भीष्मपञ्चक-व्रतका पालन करना चाहिये। भगवान्‌को भक्तिपूर्वक जलसे स्नान कराये। फिर मधु, दूध, घी,

पञ्चगव्य, गन्ध और चन्दनमिश्रित जलसे उनका अभिषेक करे। तदनन्तर सुगन्धित चन्दन और केशरमें कपूर और खस मिलाकर भगवान्‌के श्रीविग्रहपर उसका लेप करे। फिर गन्ध और धूपके साथ सुन्दर फूलोंसे श्रीहरिकी पूजा करे तथा उनकी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक घी मिलाया हुआ गूगल जलाये। लगातार पाँच दिनोंतक भगवान्‌के समीप दिन-रात दीपक जलाये रखे। देवाधिदेव श्रीविष्णुको नैवेद्यके रूपमें उत्तम अन्न निवेदन करे। इस प्रकार भगवान्‌का स्मरण और उन्हें प्रणाम करके उनकी अर्चना करे। फिर '**ॐ नमो वासुदेवाय**' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे तथा उस षडक्षर मन्त्रके अन्तमें '**स्वाहा**' पद जोड़कर उसके उच्चारणपूर्वक घृतमिश्रित तिल, चावल और जौ आदिसे अग्निमें हवन करे। सायंकालमें सन्ध्योपासना करके भगवान् गरुड़ध्वजको प्रणाम करे और पूर्ववत् षडक्षर मन्त्रका जप करके व्रत-पालनपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। इन सब विधियोंका पाँच दिनोंतक पालन करते रहना चाहिये।

एकादशीको सनातन भगवान् हृषीकेशका पूजन करके थोड़ा-सा गोबर खाकर उपवास करे। फिर द्वादशीको व्रती पुरुष भूमिपर बैठकर मन्त्रोच्चारणके साथ गोमूत्र-पान करे। त्रयोदशीको दूध पीकर रहे। चतुर्दशीको दही भोजन करे। इस प्रकार शरीरकी शुद्धिके लिये चार दिनोंका लङ्घन करके पाँचवें दिन स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् केशवकी पूजा करे और भक्तिके साथ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। पापबुद्धिका परित्याग करके बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे। शाकाहारसे अथवा मुनियोंके अन्न (तिन्नीके चावल)-से इस प्रकार निर्वाह करते हुए मनुष्य श्रीकृष्णके पूजनमें संलग्न रहे। उसके बाद रात्रिमें पहले पञ्चगव्य-पान करके पीछे अन्न भोजन करे। इस प्रकार भलीभाँति व्रतकी पूर्ति करनेसे मनुष्य शास्त्रोक्त

फलका भागी होता है। इस भीष्म-व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य परमपदको प्राप्त करता है। स्त्रियोंको भी अपने स्वामीकी आज्ञा लेकर इस धर्मवर्धक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। विधवाएँ भी मोक्ष-सुखकी वृद्धि, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति तथा पुण्यकी प्राप्तिके लिये इस व्रतका पालन करें। भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगे रहकर प्रतिदिन बलिवैश्वदेव भी करना चाहिये। यह आरोग्य और पुत्र प्रदान करनेवाला तथा महापातकोंका नाश करनेवाला है। एकादशीसे लेकर पूर्णिमातकका जो व्रत है, वह इस पृथ्वीपर भीष्मपञ्चकके नामसे विख्यात है। भोजनपरायण पुरुषके लिये इस व्रतका निषेध है। इस व्रतका पालन करनेपर भगवान् विष्णु शुभ फल प्रदान करते हैं।

महादेवजी कहते हैं—यह मोक्षदायक शास्त्र अनधिकारी पुरुषोंके सामने प्रकाशित करनेयोग्य नहीं है। जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है। कार्तिकेय! इस व्रतको यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। जो त्यागी मनुष्य हैं, वे भी यदि इस व्रतका अनुष्ठान करें तो उनके पुण्यको बतलानेमें मैं असमर्थ हूँ। इस प्रकार कार्तिकमासका जो कुछ भी फल है, वह सब मैंने बतला दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—देवदेव भगवान् शङ्करने पुत्रकी मङ्गल-कामनासे यह व्रत उसे बताया था। पिताके वचन सुनकर कार्तिकेय आनन्दमग्न हो गये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस कार्तिकमाहात्म्यका पाठ करता, सुनता और सुनकर हृदयमें धारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। इस माहात्म्यका श्रवण करनेमात्रसे ही धन, धान्य, यश, पुत्र, आयु और आरोग्यकी प्राप्ति हो जाती है।

पद्मपुराणान्तर्गत कार्तिकमास-माहात्म्य सम्पूर्ण

माघ-माहात्म्य

वसिष्ठजीका दिलीपसे तथा भृगुजीका विद्याधरसे माघस्नानकी महिमा बताना तथा माघस्नानसे विद्याधरकी कुरूपताका दूर होना

ऋषियोंने कहा—लोमहर्षण सूतजी! अब हमें माघका माहात्म्य सुनाइये, जिसको सुननेसे लोगोंका महान् संशय दूर हो जाय।

सूतजी बोले—मुनिवरो! आपलोगोंको साधुवाद देता हूँ। आप भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत भक्त हैं; इसीलिये प्रसन्नता और भक्तिके साथ आपलोग बार-बार भगवान्‌की कथाएँ पूछा करते हैं। मैं आपके कथनानुसार माघ-माहात्म्यका वर्णन करूँगा; जो अरुणोदयकालमें स्नान करके इसका श्रवण करते हैं, उनके पुण्यकी वृद्धि और पापका नाश होता है। एक समयकी बात है, राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज दिलीपने यज्ञका अनुष्ठान पूरा करके ऋषियोंद्वारा मङ्गल-विधान होनेके पश्चात् अवभृथ-स्नान किया। उस समय सम्पूर्ण नगरनिवासियोंने उनका बड़ा सम्मान किया। तदनन्तर राजा अयोध्यामें रहकर प्रजाजनोंकी रक्षा करने लगे। वे समय-समयपर वसिष्ठजीकी अनुमति लेकर प्रजावर्गका पालन किया करते थे। एक दिन उन्होंने वसिष्ठजीसे कहा—'भगवन्! आपके प्रसादसे मैंने आचार, दण्डनीति, नाना प्रकारके राजधर्म, चारों वर्णों और आश्रमोंके कर्म, दान, दानकी विधि, यज्ञ, यज्ञके विधान, अनेकों व्रत, उनके उद्यापन तथा भगवान् विष्णुकी आराधना आदिके

सम्बन्धमें बहुत कुछ सुना है। अब माघस्नानका फल सुननेकी इच्छा है। मुने! जिस विधिसे इसको करना चाहिये, वह मुझे बताइये।'

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें माघस्नानका फल बतलाता हूँ, सुनो। जो लोग होम, यज्ञ तथा इष्टापूर्त कर्मोंके बिना ही उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हों, वे माघमें प्रातःकाल बाहरके जलमें स्नान करें। जो गौ, भूमि, तिल, वस्त्र, सुवर्ण और धान्य आदि वस्तुओंका दान किये बिना ही स्वर्गलोकमें जाना चाहते हों, वे माघमें सदा प्रातःकाल स्नान करें। जो तीन-तीन राततक उपवास, कृच्छ्र और पराक आदि व्रतोंके द्वारा अपने शरीरको सुखाये बिना ही स्वर्ग पाना चाहते हों, उन्हें भी माघमें सदा प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। वैशाखमें जल और अन्नका दान उत्तम है, कार्तिकमें तपस्या और पूजाकी प्रधानता है तथा माघमें जप, होम और दान—ये तीन बातें विशेष हैं। जिन लोगोंने माघमें प्रातःस्नान, नाना प्रकारका दान और भगवान् विष्णुका स्तोत्र-पाठ किया है, वे ही दिव्यधाममें आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। प्रिय वस्तुके त्याग और नियमोंके पालनसे माघ सदा धर्मका साधक होता है और अधर्मकी जड़ काट देता है। यदि सकामभावसे माघस्नान किया जाय तो उससे मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि होती है और निष्कामभावसे स्नान आदि करनेपर वह मोक्ष देनेवाला होता है। निरन्तर दान करनेवाले, वनमें रहकर तपस्या करनेवाले और सदा अतिथि-सत्कारमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंको जो दिव्यलोक प्राप्त होते हैं, वे ही माघस्नान करनेवालोंको भी मिलते हैं। अन्य पुण्योंसे स्वर्गमें गये हुए मनुष्य पुण्य समाप्त होनेपर वहाँसे लौट आते हैं; किन्तु माघस्नान करनेवाले मानव कभी वहाँसे लौटकर नहीं आते। माघस्नानसे बढ़कर कोई पवित्र और पापनाशक व्रत नहीं है। इससे बढ़कर कोई तप और इससे बढ़कर कोई महत्त्वपूर्ण साधन

नहीं है। यही परम हितकारक और तत्काल पापोंका नाश करनेवाला है। महर्षि भृगुने मणिपर्वतपर विद्याधरसे कहा था—'जो मनुष्य माघके महीनेमें, जब उषःकालकी लालिमा बहुत अधिक हो, गाँवसे बाहर नदी या पोखरेमें नित्य स्नान करता है, वह पिता और माताके कुलकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके स्वयं देवताओंके समान शरीर धारण कर स्वर्गलोकमें चला जाता है।'

दिलीपने पूछा—ब्रह्मन्! ब्रह्मर्षि भृगुने किस समय मणिपर्वतपर विद्याधरको धर्मोपदेश किया था—बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! प्राचीन कालमें एक समय बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। इससे सारी प्रजा उद्विग्न और दुर्बल होकर दसों दिशाओंमें चली गयी। उस समय हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीचका प्रदेश खाली हो गया। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और वेदाध्ययन—सब बंद हो गये। समस्त लोकमें उपद्रव होने लगा। धर्मका तो लोप हो ही गया था, प्रजाका भी अभाव हो गया। भूमण्डलपर फल, मूल, अन्न और पानीकी बिलकुल कमी हो गयी। उन दिनों नाना प्रकारके वृक्षोंसे आच्छादित नर्मदा नदीके रमणीय तटपर महर्षि भृगुका आश्रम था। वे उस आश्रमसे शिष्योंसहित निकलकर हिमालय पर्वतकी शरणमें गये। वहाँ कैलासगिरिके पश्चिममें मणिकूट नामका पर्वत है, जो सोने और रत्नोंका ही बना हुआ है। उस परम रमणीय श्रेष्ठ पर्वतको देखकर अकालपीड़ित महर्षि भृगुका मन बहुत प्रसन्न हुआ और उन्होंने वहीं अपना आश्रम बना लिया। उस मनोहर शैलपर वनों और उपवनोंमें रहते हुए सदाचारी भृगुजीने दीर्घकालतक भारी तपस्या की।

इस प्रकार जब ब्रह्मर्षि भृगुजी वहाँ अपने आश्रमपर निवास करते थे, एक समय एक विद्याधर अपनी पत्नीके साथ पर्वतसे नीचे

उतरा। वे दोनों मुनिके पास आये और उन्हें प्रणाम करके अत्यन्त दुःखी हो एक ओर खड़े हो गये। उन्हें इस अवस्थामें देख ब्रह्मर्षिने मधुर वाणीसे पूछा—'विद्याधर! प्रसन्नताके साथ बताओ, तुम दोनों इतने दुःखी क्यों हो?'

विद्याधरने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मेरे दुःखका कारण सुनिये। मैं पुण्यका फल पाकर देवलोकमें गया। वहाँ देवताका शरीर, दिव्य नारीका सुख और दिव्य भोगोंका अनुभव प्राप्त करके भी मेरा मुँह बाघका-सा हो गया। न जाने यह किस दुष्कर्मका फल उपस्थित हुआ है। यही सोच-सोचकर मेरे मनको कभी शान्ति नहीं मिलती। ब्रह्मन्! एक और भी कारण है, जिससे मेरा मन व्याकुल हो रहा है। यह मेरी कल्याणमयी पत्नी बड़ी मधुरभाषिणी तथा सुन्दरी है। स्वर्गलोकमें शील, उदारता, गुणसमूह, रूप और यौवनकी सम्पत्तिद्वारा इसकी समानता करनेवाली एक भी स्त्री नहीं है। कहाँ तो यह देवमुखी सुन्दरी रमणी और कहाँ मेरे-जैसा व्याघ्रमुख पुरुष? ब्रह्मन्! मैं इसी बातकी चिन्ता करके मन-ही-मन सदा जलता रहता हूँ।

भृगुजीने कहा—विद्याधरश्रेष्ठ! पूर्वजन्ममें तुम्हारे द्वारा जो अनुचित कर्म हुआ है, वह सुनो। निषिद्ध कर्म कितना ही छोटा क्यों न हो, परिणाममें वह भयङ्कर हो जाता है। तुमने पूर्वजन्ममें माघके महीनेमें एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन शरीरमें तेल लगा लिया था। इसीसे तुम्हारा मुँह व्याघ्रके समान हो गया। पुण्यमयी एकादशीका व्रत करके द्वादशीको तेलका सेवन करनेसे पूर्वकालमें इलानन्दन पुरूरवाको भी कुरूप शरीरकी प्राप्ति हुई थी। वे अपने शरीरको कुरूप देख उसके दुःखसे बहुत दुःखी हुए और गिरिराज हिमालयपर जाकर गङ्गाजीके किनारे स्नान आदिसे पवित्र हो प्रसन्नतापूर्वक कुशासनपर बैठे। राजाने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके हृदयमें भगवान्‌का

ध्यान करना आरम्भ किया। उन्होंने ध्यानमें देखा—भगवान्‌का श्रीविग्रह नूतन नील मेघके समान श्याम है। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल हैं। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। उनका श्रीअङ्ग पीताम्बरसे ढका है। वक्ष:स्थलमें कौस्तुभमणि अपना प्रकाश फैला रही है तथा वे गलेमें वनमाला धारण किये हुए हैं। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करते हुए राजाने प्राणवायुके मार्गको भीतर ही रोक लिया और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये कुण्डलिनीके मुखको ऊपर उठाकर स्वयं सुषुम्णा नाडीमें स्थित हो गये। इस तरह एक मासतक निराहार रहकर उन्होंने दुष्कर तपस्या की।

इस थोड़े दिनोंकी तपस्यासे ही भगवान् संतुष्ट हो गये। उन्होंने राजाके सात जन्मोंकी आराधनाका स्मरण करके उन्हें स्वयं प्रकट हो प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस दिन माघ शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी, सूर्य मकर राशिपर स्थित थे। भगवान् वासुदेवने बड़ी प्रसन्नताके साथ चक्रवर्ती नरेश पुरूरवापर शङ्खका जल छोड़ा और उन्हें अत्यन्त सुन्दर एवं कमनीय रूप प्रदान किया। वह रूप इतना मनोहर था, जिससे देवलोककी नायिका उर्वशी भी आकृष्ट हो गयी और उसने पुरूरवाको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषा की। इस प्रकार राजा पुरूरवा भगवान्‌से वरदान पाकर कृतकृत्य हो अपने नगरमें लौट आये। विद्याधर! कर्मकी गति ऐसी ही है। इसे जानकर भी तुम क्यों खिन्न होते हो? यदि तुम अपने मुखकी कुरूपता दूर करना चाहते हो तो मेरे कहनेसे शीघ्र ही मणिकूट-नदीके जलमें माघस्नान करो। वह प्राचीन पापोंका नाश करनेवाला है। तुम्हारे भाग्यसे माघ बिलकुल निकट है। आजसे पाँच दिनके बाद ही माघमास आरम्भ हो जायगा। तुम पौषके शुक्लपक्षकी एकादशीसे ही नीचे वेदीपर सोया करो और एक महीनेतक निराहार रहकर तीनों समय स्नान

करो। भोगोंको त्यागकर जितेन्द्रियभावसे तीनों काल भगवान् विष्णुकी पूजा करते रहो। विद्याधरश्रेष्ठ! जिस दिन माघ शुक्ला एकादशी आयेगी, उस दिनतक तुम्हारे सारे पाप जलकर भस्म हो जायँगे। फिर द्वादशीके पवित्र दिनको मैं मन्त्रपूत कल्याणमय जलसे अभिषेक करके तुम्हारा मुख कामदेवके समान सुन्दर कर दूँगा। फिर देवमुख होकर इस सुन्दरीके साथ तुम सुखपूर्वक क्रीड़ा करते रहना।

विद्याधर! माघके स्नानसे विपत्तिका नाश होता है और माघके स्नानसे पाप नष्ट हो जाते हैं। माघ सब व्रतोंसे बढ़कर है तथा यह सब प्रकारके दानोंका फल प्रदान करनेवाला है। पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, अविमुक्तक्षेत्र (काशी), प्रयाग तथा गङ्गा-सागर-संगममें दस वर्षोंतक शौच-सन्तोषादि नियमोंका पालन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह माघके महीनेमें तीन दिनोंतक प्रातःस्नान करनेसे ही मिल जाता है। जिनके मनमें दीर्घकालतक स्वर्गलोकके भोग भोगनेकी अभिलाषा हो, उन्हें सूर्यके मकर राशिपर रहते समय जहाँ कहीं भी जल मिले, प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। आयु, आरोग्य, रूप, सौभाग्य एवं उत्तम गुणोंमें जिनकी रुचि हो, उन्हें सूर्यके मकर राशिपर रहनेतक प्रातःकाल अवश्य स्नान करना चाहिये। जो नरकसे डरते हैं और दरिद्रताके महासागरसे जिन्हें त्रास होता है, उन्हें सर्वथा प्रयत्नपूर्वक माघमासमें प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। देवश्रेष्ठ! दरिद्रता, पाप और दुर्भाग्यरूपी कीचड़को धोनेके लिये माघस्नानके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। अन्य कर्मोंको यदि अश्रद्धापूर्वक किया जाय तो वे बहुत थोड़ा फल देते हैं; किन्तु माघस्नान यदि श्रद्धाके बिना भी विधिपूर्वक किया जाय तो वह पूरा-पूरा फल देता है। गाँवसे बाहर नदी या पोखरेके जलमें जहाँ कहीं भी निष्काम या सकामभावसे माघस्नान करनेवाला पुरुष इस

लोक और परलोकमें दुःख नहीं देखता। जैसे चन्द्रमा कृष्णपक्षमें क्षीण होता और शुक्लपक्षमें बढ़ता है, उसी प्रकार माघमासमें स्नान करनेपर पाप क्षीण होता और पुण्यराशि बढ़ती है। जैसे समुद्रमें नाना प्रकारके रत्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार माघस्नानसे आयु, धन और स्त्री आदि सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे कामधेनु और चिन्तामणि मनोवाञ्छित भोग देती हैं, उसी प्रकार माघस्नान सब मनोरथोंको पूर्ण करता है। सत्ययुगमें तपस्याको, त्रेतामें ज्ञानको, द्वापरमें भगवान्‌के पूजनको और कलियुगमें दानको उत्तम माना गया है; परन्तु माघका स्नान सभी युगोंमें श्रेष्ठ समझा गया है।* सबके लिये, समस्त वर्णों और आश्रमोंके लिये माघका स्नान धर्मकी धारावाहिक वृष्टि करता है।

भृगुजीके ये वचन सुनकर वह विद्याधर उसी आश्रमपर ठहर गया और माघमासमें भृगुजीके साथ ही उसने विधिपूर्वक पर्वतीय नदीके कुण्डमें पत्नीसहित स्नान किया। महर्षि भृगुके अनुग्रहसे विद्याधरने अपना मनोरथ प्राप्त कर लिया। फिर वह देवमुख होकर मणिपर्वतपर आनन्दपूर्वक रहने लगा। भृगुजी उसपर कृपा करके बहुत प्रसन्न हुए और पुनः विन्ध्यपर्वतपर अपने आश्रममें चले आये। उस विद्याधरका मणिमय पर्वतकी नदीमें माघस्नान करनेमात्रसे कामदेवके समान मुख हो गया तथा भृगुजी भी नियम समाप्त करके शिष्योंसहित विन्ध्याचल पर्वतकी घाटीमें उतरकर नर्मदा-तटपर आये।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! महर्षि भृगुके द्वारा विद्याधरके प्रति कहा हुआ यह माघ-माहात्म्य सम्पूर्ण भुवनका सार है तथा नाना प्रकारके फलोंसे विचित्र जान पड़ता है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, वह देवताकी भाँति समस्त सुन्दर भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

---

* कृते तपः परं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा। द्वापरे च कलौ दानं माघः सर्वयुगेषु च॥ (२२१। ८०)

मृगशृङ्ग मुनिका भगवान्‌से वरदान प्राप्त करके अपने घर लौटना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मैं माघमासका प्रभाव बतलाता हूँ, सुनो। इसे भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्राचीन रथन्तर कल्पके सत्ययुगमें कुत्स नामके एक ऋषि थे, जो ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे बड़े ही तेजस्वी और निष्पाप थे। उन्होंने कर्दम ऋषिकी सुन्दरी कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके गर्भसे मुनिके वत्स नामक पुत्र हुआ, जो वंशको बढ़ानेवाला था। वत्सकी पाँच वर्षकी अवस्था होनेपर पिताने उनका उपनयन-संस्कार करके उन्हें गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। अब वे ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भृगुकुलमें निवास करने लगे। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल अग्निहोत्र, तीनों समय स्नान और भिक्षाके अन्नका भोजन करते थे। इन्द्रियोंको काबूमें रखते, काला मृगचर्म धारण करते और सदा स्वाध्यायमें संलग्न रहते थे। पैरसे लेकर शिखातक लंबा पलाशका डंडा, जिसमें कोई छेद न हो, लिये रहते थे। उनके कटिभागमें मूँजकी मेखला शोभा पाती थी। हाथमें सदा कमण्डलु धारण करते, स्वच्छ कौपीन पहनते, शुद्ध भावसे रहते और स्वच्छ यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनका मस्तक समिधाओंकी भस्मसे सुशोभित था। वे सबके नयनोंको प्रिय जान पड़ते थे। प्रतिदिन माता, पिता, गुरु, आचार्य, अन्यान्य बड़े-बूढ़ों, संन्यासियों तथा ब्रह्मवादियोंको प्रणाम करते थे। बुद्धिमान् वत्स ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते और सदा शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया करते थे। वे हाथमें पवित्री धारण करके देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करते थे। फूल, चन्दन और गन्ध आदिको कभी हाथसे छूते भी नहीं थे। मौन होकर भोजन करते। मधु, पिण्याक और खारा नमक नहीं खाते थे। खड़ाऊँ नहीं पहनते थे तथा सवारीपर नहीं चढ़ते। शीशेमें मुँह

नहीं देखते। दन्तधावन, ताम्बूल और पगड़ी आदिसे परहेज रखते थे। नीला, लाल तथा पीला वस्त्र, खाट, आभूषण तथा और भी जो-जो वस्तुएँ ब्रह्मचर्य-आश्रमके प्रतिकूल बतायी गयी हैं, उन सबका वे स्पर्शतक नहीं करते थे; सदा शान्तभावसे सदाचारमें ही तत्पर रहते थे।

ऐसे आचारवान् और विशेषत: ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले वत्स मुनि सूर्यके मकर राशिपर रहते माघमासमें भक्तिपूर्वक प्रात:स्नान करते थे। वे उस समय विशेषरूपसे शरीरकी शुद्धि करते थे। आकाशमें जब इने-गिने तारे रह जाते थे, उस समय—ब्रह्मवेलामें तो वे नित्यस्नान करते थे और फिर जब आधे सूर्य निकल आते, उस समय भी माघका स्नान करते थे। वे मन-ही-मन अपने भाग्यकी सराहना करने लगे—'अहो! इस पश्चिमवाहिनी कावेरी नदीमें स्नानका अवसर मिलना प्राय: मनुष्योंके लिये कठिन है, तो भी मैंने मकरार्कमें यहाँ स्नान किया। वास्तवमें मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ। समुद्रमें मिली हुई जितनी नदियाँ हैं, उन सबका प्रवाह जहाँ पश्चिम या उत्तरकी ओर है, उस स्थानका प्रयागसे भी अधिक महत्त्व बतलाया गया है। मैंने अपने पूर्वपुण्योंके प्रभावसे आज कावेरीका पश्चिमगामी प्रवाह प्राप्त किया है। वास्तवमें मैं कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ।' इस प्रकार सोचते हुए वे प्रसन्न होकर कावेरीके जलमें तीनों काल स्नान करते थे। उन्होंने कावेरीके पश्चिमगामी प्रवाहमें तीन सालतक माघ-स्नान किया। उसके पुण्यसे उनका अन्त:करण शुद्ध हो गया। वे ममता और कामनासे रहित हो गये। तदनन्तर माता, पिता और गुरुकी आज्ञा लेकर वे सर्वपापनाशक कल्याणतीर्थमें आ गये। उस सरोवरमें भी एक मासतक माघस्नान करके ब्रह्मचारी वत्स मुनि तपस्या करने लगे। राजन्! इस प्रकार उन्हें उत्तम तपस्या करते देख भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर उनके आगे प्रत्यक्ष प्रकट हुए और बोले—'महाप्राज्ञ मृगशृङ्ग! मैं

तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।' यों कहकर भगवान् पुरुषोत्तमने उनके ब्रह्मरन्ध्र-(मस्तक)का स्पर्श किया।

तब वत्स मुनि समाधिसे विरत हो जाग उठे और उन्होंने अपने सामने ही भगवान् विष्णुको उपस्थित देखा। वे सहस्र सूर्योंके समान तेजस्वी कौस्तुभमणिरूप आभूषणसे अत्यन्त भासमान दिखायी देते थे। तब मुनिने बड़े वेगसे उठकर भगवान्‌को प्रणाम किया और बड़े भावसे सुन्दर स्तुति की।

भगवान् हृषीकेशकी स्तुति और नमस्कार करके वत्स मुनि अपने मस्तकपर हाथ जोड़े चुपचाप भगवान्‌के सामने खड़े हो गये। उस समय उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह रहे थे और सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया था।

तब श्रीभगवान्‌ने कहा—मृगशृङ्ग! तुम्हारी इस स्तुतिसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। माघमासमें इस सरोवरके जलमें जो तुमने स्नान और तप किये हैं, इससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। मुने! तुम निरन्तर कष्ट सहते-सहते थक गये हो। दक्षिणाओंसहित यज्ञ, दान, अन्यान्य नियम तथा यमोंके पालनसे भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना माघके स्नानसे होता है। पहले तुम मुझसे वर माँगो। फिर मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करूँगा। मृगशृङ्ग! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये मैं जो आज्ञा दूँ, उसका पालन करो। इस समय तुम्हारे ब्रह्मचर्यसे जिस प्रकार ऋषियोंको सन्तोष हुआ है, उसी प्रकार तुम यज्ञ करके देवताओंको और सन्तान उत्पन्न करके पितरोंको संतुष्ट करो। मेरे सन्तोषके लिये ये दोनों कार्य तुम्हें सर्वथा करने चाहिये। अगले जन्ममें तुम ब्रह्माजीके पुत्र महाज्ञानी ऋभुनामक जीवन्मुक्त ब्राह्मण होओगे और निदाघको वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञानका उपदेश करके पुनः परमधामको प्राप्त होओगे।

मृगशृङ्ग बोले—देवदेव! सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित जगन्नाथ!

आप यहाँ सदा निवास करें और सबको सब प्रकारके भोग प्रदान करते रहें। आप सदा सब जीवोंको सब तरहकी सम्पत्ति प्रदान करें। भगवन्! यदि मैं आपका कृपापात्र हूँ तो यही एक वर, जिसे निवेदन कर चुका हूँ, देनेकी कृपा करें। कमलनयन! चरणोंमें पड़े हुए भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले अच्युत! आप मुझपर प्रसन्न होइये। शरणागतवत्सल! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

भगवान् विष्णु बोले—मृगशृङ्ग! एवमस्तु, मैं सदा यहाँ निवास करूँगा। जो लोग यहाँ मेरा पूजन करेंगे, उन्हें सब प्रकारकी सम्पत्ति हाथ लगेगी। विशेषतः जब सूर्य मकर राशिपर हों, उस समय इस सरोवरमें स्नान करनेवाले मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो मेरे परमपदको प्राप्त होंगे। व्यतीपात योगमें, अयन प्रारम्भ होनेके दिन, संक्रान्तिके समय, विषुव योगमें, पूर्णिमा और अमावास्या तिथिको तथा चन्द्रग्रहण और सूर्य-ग्रहणके अवसरपर यहाँ स्नान करके यथाशक्ति दान देनेसे और तुम्हारे मुखसे निकले हुए इस स्तोत्रका मेरे सामने पाठ करनेसे मनुष्य मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होगा।

भगवान् गोविन्दके यों कहनेपर उन ब्राह्मणकुमारने पुनः प्रणाम किया और भक्तोंके अधीन रहनेवाले श्रीहरिसे फिर एक प्रश्न किया—'कृपानिधे! देवेश्वर! मैं तो कुत्स मुनिका पुत्र वत्स हूँ; फिर मुझे आपने मृगशृङ्ग कहकर क्यों सम्बोधित किया?'

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! इस कल्याण-सरोवरके तटपर जब तुम तपस्या करनेमें लगे थे, उस समय जो मृग प्रतिदिन यहाँ पानी पीने आते थे, वे निर्भय होकर तुम्हारे शरीरमें अपने सींग रगड़ा करते थे। इसीसे श्रेष्ठ महर्षि तुम्हें मृगशृङ्ग कहते हैं। आजसे सब लोग तुम्हें मृगशृङ्ग ही कहेंगे।

यों कहकर सबको सब कुछ प्रदान करनेवाले भगवान् सर्वेश्वर

वहाँ रहने लगे। तदनन्तर मृगशृङ्ग मुनिने भगवान्‌का पूजन किया और उनकी आज्ञा लेकर वे उस पर्वतसे चले गये। संसारका उपकार करनेके लिये उन्होंने गृहस्थ-धर्मको स्वीकार करनेका निश्चय किया और अपने अन्तःकरणमें निरन्तर वे आदिपुरुष कमलनयन भगवान् विष्णुका चिन्तन करने लगे। अपनी जन्मभूमि भोजराजनगरमें घर आकर उन्होंने माता और पिताको नमस्कार करके अपना सारा समाचार कह सुनाया। माता-पिताके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगाकर बारम्बार उसका मस्तक सूँघा और प्रेमपूर्वक अभिनन्दन किया। वत्स अपने गुरुको प्रणाम करके फिर स्वाध्यायमें लग गये। पिता, माता और गुरु—तीनोंकी प्रतिदिन सेवा करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया और गुरुकी आज्ञा ले विधिपूर्वक व्रतस्नान और उत्सर्गका कार्य पूर्ण किया। तत्पश्चात् महामना मृगशृङ्ग अपने पितासे इस प्रकार बोले—'तात! पुत्रकी उत्पत्तिके लिये पिता और माताको जो क्लेश सहने पड़ते हैं, उनका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता; अतः पुत्रको उचित है कि वह माता-पिता तथा गुरुका भी सदा ही प्रिय करे। इन तीनोंके अत्यन्त सन्तुष्ट होनेपर सब तपस्या पूर्ण हो जाती है। इन तीनोंकी सेवाको ही सबसे बड़ा तप कहा गया है। इनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके जो कुछ भी किया जाता है, वह कभी सिद्ध नहीं होता। विद्वान् पुरुष इन्हीं तीनोंकी आराधना करके तीनों लोकोंपर विजय पाता है। जिससे इन तीनोंको संतोष हो, वही मनुष्योंके लिये चारों पुरुषार्थ कहा गया है; इसके सिवा जो कुछ भी है, वह उपधर्म कहलाता है। मनुष्यको उचित है कि वह अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पितासे क्रमशः तीन, दो या एक वेदका अध्ययन करनेके पश्चात् गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। यदि पत्नी अपने वशमें रहे तो गृहस्थाश्रमसे बढ़कर दूसरी

कोई वस्तु नहीं है। पति और पत्नीकी अनुकूलता धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिका प्रधान कारण है। यदि स्त्री अनुकूल हो तो स्वर्गसे क्या लेना है—घर ही स्वर्ग हो जाता है और यदि पत्नी विपरीत स्वभावकी मिल गयी तो नरकमें जानेकी क्या आवश्यकता है—यहीं नरकका दृश्य उपस्थित हो जाता है। सुखके लिये गृहस्थाश्रम स्वीकार किया जाता है; किन्तु वह सुख पत्नीके अधीन है। यदि पत्नी विनयशील हो तो धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति निश्चित है।

जो गृहकार्यमें चतुर, सन्तानवती, पतिव्रता, प्रिय वचन बोलनेवाली और पतिके अधीन रहनेवाली है—ऐसी उपर्युक्त गुणोंसे युक्त नारी स्त्रीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी है। इसलिये अपने समान वर्णकी उत्तम लक्षणोंवाली भार्यासे विवाह करना चाहिये। जो पिताके गोत्र अथवा माताके सपिण्डवर्गमें उत्पन्न न हुई हो, वह स्त्री विवाह करनेयोग्य होती है तथा उसीसे द्विजोंके धर्मकी वृद्धि होती है।

जिसको कोई रोग न हो, जिसके भाई हो, जो अवस्था और कदमें अपनेसे कुछ छोटी हो, जिसका मुख सौम्य हो तथा जो मधुर भाषण करनेवाली हो, ऐसी भार्याके साथ द्विजको विवाह करना चाहिये। जिसका नाम पर्वत, नक्षत्र, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी तथा नौकरोंके नामपर न रखा गया हो, जिसके नाममें कोमलता हो, ऐसी कन्यासे बुद्धिमान् पुरुषको विवाह करना चाहिये।

इस प्रकार उत्तम लक्षणोंकी परीक्षा करके ही किसी कन्याके साथ विवाह करना उचित है। उत्तम लक्षण और अच्छे आचरणवाली कन्या पतिकी आयु बढ़ाती है, अतः पिताजी! ऐसी भार्या कहाँ मिलेगी?

कुत्सने कहा—परम बुद्धिमान् मृगशृङ्ग! इसके लिये कोई विचार न करो। तुम्हारे-जैसे सदाचारी पुरुषके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो सदाचारहीन, आलसी, माघ-स्नान न करनेवाले, अतिथि-

पूजासे दूर रहनेवाले, एकादशीको उपवास न करनेवाले, महादेवजीकी भक्तिसे शून्य, माता-पितामें भक्ति न रखनेवाले, गुरुको सन्तोष न देनेवाले, गौओंकी सेवासे विमुख, ब्राह्मणोंका हित न चाहनेवाले, यज्ञ, होम और श्राद्ध न करनेवाले, दूसरोंको न देकर अकेले खानेवाले, दान, धर्म और शीलसे रहित तथा अग्निहोत्र न करके भोजन करनेवाले हैं, ऐसे लोगोंके लिये ही वैसी स्त्रियाँ दुर्लभ हैं। बेटा! प्रातःकाल स्नान करनेपर माघका महीना विद्या, निर्मल कीर्ति, आरोग्य, आयु, अक्षय धन, समस्त पापोंसे मुक्ति तथा इन्द्रलोक प्रदान करता है। बेटा! माघमास सौभाग्य, सदाचार, सन्तान-वृद्धि, सत्सङ्ग, सत्य, उदारभाव, ख्याति, शूरता और बल—सब कुछ देता है। कहाँतक गिनाऊँ, वह क्या-क्या नहीं देता। पुण्यात्मन्! कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णु माघस्नान करनेसे तुमपर बहुत प्रसन्न हैं।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्?! पिताके ये सत्य वचन सुनकर मृगशृङ्ग मुनि मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाकर पुनः प्रणाम किया और दिन-रात वे अपने हृदयमें श्रीहरिका ही चिन्तन करने लगे।

मृगशृङ्ग मुनिके द्वारा माघके पुण्यसे एक हाथीका उद्धार तथा मरी हुई कन्याओंका जीवित होना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! भोजपुरमें उचथ्य नामक एक श्रेष्ठ मुनि थे। उनके कमलके समान नेत्रोंवाली एक कन्या थी, जिसका नाम सुवृत्ता था। वह माघमासमें प्रतिदिन सबेरे ही उठकर अपनी कुमारी सखियोंके साथ कावेरी नदीके पश्चिमगामी प्रवाहमें स्नान किया करती थी। स्नानके समय वह इस प्रकार प्रार्थना करती—'देवि! तुम

सह्य-पर्वतकी घाटीसे निकलकर श्रीरङ्गक्षेत्रमें प्रवाहित होती हो। श्रीकावेरी! तुम्हें नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश करो। मरुद्वृधे! तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो। माघमासमें जो लोग तुम्हारे जलमें स्नान करते हैं, उनके बड़े-बड़े पापोंको हर लेती हो। माता! मुझे मङ्गल प्रदान करो। पश्चिमवाहिनी कावेरी! मुझे पति, धन, पुत्र, सम्पूर्ण मनोरथ और पातिव्रत्य-पालनकी शक्ति दो।' यों कहकर सुवृत्ता कावेरीको प्रणाम करती और जब कुछ-कुछ सूर्यका उदय होने लगता, उसी समय वह नित्यस्नान किया करती थी। इस प्रकार उसने तीन वर्षोंतक माघस्नान किया। उसका उत्तम चरित्र तथा गृहकार्यमें चतुरता देखकर पिताका मन बड़ा प्रसन्न रहता था। वे सोचने लगे—अपनी कन्याका विवाह किससे करूँ? इसी बीचमें कुत्स मुनिने अपने पुत्र ब्रह्मचारी वत्सका विवाह करनेके लिये उचथ्यकी सुमुखी कन्या सुवृत्ताका वरण करनेका विचार किया। सुवृत्ता बड़ी सुन्दरी थी। उसमें अनेक शुभ लक्षण थे। वह बाहर-भीतरसे शुद्ध तथा नीरोग थी। उस समय उसकी कहीं तुलना नहीं थी। वत्स मुनिने उससे विवाह करनेकी अभिलाषा की।

एक दिन सुवृत्ता अपनी तीन सखियोंके साथ माघस्नान करनेके लिये अरुणोदयके समय कावेरीके तटपर आयी। उसी समय एक भयानक जंगली हाथी पानीसे निकला। उसे देखकर सुवृत्ता आदि कन्याएँ भयसे व्याकुल होकर भागीं। हाथी भी बहुत दूरतक उनके पीछे-पीछे गया। चारों कन्याएँ वेगसे दौड़नेके कारण हाँफने लगीं और तिनकोंसे ढँके हुए एक बहुत बड़े जलशून्य कुएँमें गिर पड़ीं। कुएँमें गिरते ही उनके प्राण निकल गये। जब वे घर लौटकर नहीं आयीं, तब माता-पिता उनकी खोज करते हुए इधर-उधर भटकने लगे। उन्होंने वन-वनमें घूमकर झाड़ी-झाड़ी छान डाली। आगे जानेपर

उन्हें एक गहरा कुआँ दिखायी दिया, जो तिनकोंसे ढँका होनेके कारण प्रायः दृष्टिमें नहीं आता था। उन्होंने देखा, वे कमललोचना कन्याएँ कुएँके भीतर निर्जीव होकर पड़ी हैं। उनकी माताएँ कन्याओंके पास चली गयीं और शोकग्रस्त हो बारम्बार उन्हें छातीसे लगाकर 'विमले! कमले! सुवृत्ते! सुरसे! आदि नाम ले-लेकर विलाप करने लगीं।

कन्याओंकी माताएँ जब इस प्रकार जोर-जोरसे क्रन्दन कर रही थीं, उसी समय तपस्याके भण्डार, कान्तिमान्, धीर तथा जितेन्द्रिय, श्रीमान् मृगशृङ्ग मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मन-ही-मन एक उपाय सोचा और सोचकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—'जबतक इन कमलनयनी कन्याओंको जीवित न कर दूँ तबतक आपलोग इनके सुन्दर शरीरकी रक्षा करें।' यों कहकर मुनि परम पावन कावेरीके तटपर गये और कण्ठभर पानीमें खड़े हो, मुख एवं भुजाओंको ऊपर उठाये सूर्यदेवकी ओर देखते हुए मृत्यु देवताकी स्तुति करने लगे। इसी बीचमें एक समय वही हाथी पानीके भीतरसे उठा और उन ब्राह्मण मुनिको मारनेके लिये सूँड़ उठाये बड़े वेगसे उनके समीप आया। हाथीका क्रोध देखकर भी मुनिवर मृगशृङ्ग जलसे विचलित नहीं हुए, अपितु, चित्रलिखित-से चुपचाप खड़े रहे। पास आनेपर एक ही क्षणमें उस गजराजका क्रोध चला गया। वह बिलकुल शान्त हो गया। उसने मुनिको सूँड़से पकड़कर अपनी पीठपर बिठा लिया। मुनि उसके भावको समझ गये। उसके कंधेपर सुखपूर्वक बैठनेसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ और जप समाप्त करके हाथमें जल ले 'मैंने आठ दिनोंके माघस्नानका पुण्य तुम्हें दे दिया।' यों कहकर उन्होंने शीघ्र ही वह जल हाथीके मस्तकपर छोड़ दिया। इससे गजराज पापरहित हो गया और मानो इस बातको स्वयं भी समझते हुए उसने प्रलयकालीन मेघके समान बड़े जोरसे गर्जना की। उसकी इस

गर्जनासे भी मुनिके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कृपापूर्वक उस गजराजकी ओर देखकर उसके ऊपर अपना हाथ फेरा। मुनिके हाथका स्पर्श होनेसे उसने हाथीका शरीर त्याग दिया और आकाशमें देवताकी भाँति दिव्यरूप धारण किये दृष्टिगोचर हुआ। उस रूपमें उसे देखकर मुनीश्वरको बड़ा विस्मय हुआ।

तब दिव्यरूपधारी उस जीवने कहा—मुनीश्वर! मैं कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपने मुझे अत्यन्त निन्दित एवं पापमयी पशुयोनिसे मुक्त कर दिया। दयानिधे! अब मैं अपना सारा वृत्तान्त बतलाता हूँ, सुनिये। पूर्वकालकी बात है, नैषध नगरमें विश्वगुप्त नामसे प्रसिद्ध परम धर्मात्मा तथा स्वधर्मपालनमें तत्पर एक वैश्य रहते थे। मैं उन्हींका पुत्र था। मेरा नाम धर्मगुप्त था। स्वाध्याय, यजन, दान, सूद लेना, पशुपालन, गोरक्षा, खेती और व्यापार—यही सब मेरा काम था। द्विजश्रेष्ठ! मैं [अनुचित] काम और दम्भसे सदा दूर ही रहा। सत्य बोलता और किसीकी निन्दा नहीं करता था। इन्द्रियोंको काबूमें रखकर अपनी स्त्रीसे ही अनुराग करता था और परायी स्त्रियोंके सम्पर्कसे बचा रहता था। मुझमें राग, भय और क्रोध नहीं थे। लोभ और मत्सरको भी मैंने छोड़ रखा था। दान देता, यज्ञ करता, देवताओंके प्रति भक्ति रखता और गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितमें संलग्न रहता था। सदा धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता तथा व्यापारके काममें कभी किसीको धोखा नहीं देता था। ब्राह्मणलोग जब यज्ञ करते, उस समय उन्हें बिना माँगे ही धन देता था। समयपर श्राद्ध तथा सम्पूर्ण देवताओंका पूजन करता था। अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्य, बहुत-से पशु, दूध-दही, मट्ठा, गोबर, घास, लकड़ी, फल, मूल, नमक, जायफल, पीपल, अन्न, सागके बीज, नाना प्रकारके वस्त्र, धातु, ईखके रससे तैयार होनेवाली वस्तुएँ और अनेक प्रकारके रस बेचा करता था। जो दूसरोंको देता था, वह तौलमें

कम नहीं रहता था और जो औरोंसे लेता, वह अधिक नहीं होता था। जिन रसोंके बेचनेसे पाप होता है, उनको छोड़कर अन्य रसोंको बेचा करता था। बेचनेमें छल-कपटसे काम नहीं लेता था। जो मनुष्य साधु पुरुषोंको व्यापारमें ठगता है, वह घोर नरकमें पड़ता है तथा उसका धन भी नष्ट हो जाता है। मैं सब देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंकी प्रतिदिन सेवा करता और पाखण्डी लोगोंसे दूर रहता था। ब्रह्मन्! किसी भी प्राणीसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा ईर्ष्या किये बिना ही जो जीविका चलायी जाती है, वही परम धर्म है। मैं ऐसी ही जीविकासे जीवन-निर्वाह करता था।

इस प्रकार धर्मके मार्गसे चलकर मैंने एक करोड़ स्वर्णमुद्राओंका उपार्जन किया। मेरे एक ही पुत्र था जो सम्पूर्ण गुणोंमें श्रेष्ठ था। मैंने अपने सारे धनको दो भागोंमें बाँटकर आधा तो पुत्रको दे दिया और आधा अपने लिये रखा। अपने हिस्सेका धन लेकर पोखरा खुदवाया। नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त बगीचा लगवाया। अनेक मण्डपोंसे सुशोभित देवमन्दिर बनवाया। मरुभूमिके मार्गोंमें पौंसले और कुएँ बनवाये तथा ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ तैयार करायीं। कन्यादान, गोदान और भूमिदान किये। तिल, चावल, गेहूँ और मूँग आदिका भी दान किया। उड़द, धान, तिल और घी आदिका दान तो मैंने बहुत बार किया।

तदनन्तर रसके चमत्कारोंका वर्णन करनेवाला कोई कापालिक मेरे पास आया और कौतूहल पैदा करनेके लिये कुछ करामात दिखाकर उसने मुझे अपने मायाजालमें फँसाकर ठग लिया। उसकी करतूतें देखकर उसके प्रति मेरा विश्वास बढ़ गया और रसवाद—चाँदी, सोना आदि बनानेके नामपर मेरा सारा धन बरबाद हो गया। उस कापालिकने मुझे भ्रममें डालकर बहुत दिनोंतक भटकाया। उसके लिये धन दे-देकर मैं दरिद्र हो गया। माघका महीना आया और मैंने दस दिनोंतक

सूर्योदयके समय महानदीमें स्नान किया; किन्तु बुढ़ापेके कारण इससे अधिक समयतक मैं स्नानका नियम चलानेमें असमर्थ हो गया। इसी बीचमें मेरा पुत्र देशान्तरमें चला गया। घोड़े मर गये। खेती नष्ट हो गयी और बेटेने वेश्या रख ली। फिर भी भाई-बन्धु यह सोचकर कि यह बेचारा बूढ़ा, धर्मात्मा और पुण्यवान् है, धर्मके ही उद्देश्यसे मुझे कुछ सूखा अन्न और भात दे दिया करते थे। अब मैं अपना धर्म बेचकर कुटुम्बका पालन-पोषण करने लगा, केवल माघस्नानके फलको नहीं बेच सका। एक दिन जिह्वाकी लोलुपताके कारण दूसरेके घरपर खूब गलेतक ठूँसकर मिठाई खा ली। इससे अजीर्ण हो गया। अजीर्णसे अतिसारकी बीमारी हुई और उससे मेरी मृत्यु हो गयी। केवल माघस्नानके प्रभावसे मैं एक मन्वन्तरतक स्वर्गमें देवराज इन्द्रके पास रहा और पुण्यकी समाप्ति हो जानेपर हाथीकी योनिमें उत्पन्न हुआ। जो लोग धर्म बेचते हैं, वे हाथी ही होते हैं। विप्रवर! इस समय आपने हाथीकी योनिसे भी मेरा उद्धार कर दिया। मुझे स्वर्गकी प्राप्ति होनेके लिये आपने पुण्यदान किया है। मुनीश्वर! मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

यों कहकर वह स्वर्गको चला गया। सच है, सत्पुरुषोंका सङ्ग उत्तम गति प्रदान करनेवाला होता है। इस प्रकार महानुभाव मृगशृङ्ग वैश्यको हाथीकी योनिसे मुक्त करके स्वयं गलेतक पानीमें खड़े हो सूर्यनन्दन यमराजकी स्तुति करने लगे—

ॐ यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन चौदह नामोंसे पुकारे जानेवाले भगवान् यमराजको नमस्कार है।

जिनका मुख दाढ़ोंके कारण विकराल प्रतीत होता है और टेढ़ी भौंहोंसे युक्त आँखें क्रूरतापूर्ण जान पड़ती हैं, जिनके शरीरमें ऊपरकी

ओर उठे हुए बड़े-बड़े रोम हैं तथा ओठ भी बहुत लम्बे दिखायी देते हैं, ऐसे आप यमराजको नमस्कार है।

आपके अनेक भुजाएँ हैं, अनन्त नख हैं तथा कज्जलगिरिके समान काला शरीर और भयङ्कर रूप है। आपको नमस्कार है।

भगवन्! आपका वेष बड़ा भयानक है। आप पापियोंको भय देते, कालदण्डसे धमकाते और सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करते हैं। बहुत बड़ा भैंसा आपका वाहन है। आपके नेत्र दहकते हुए अँगारोंके समान जान पड़ते हैं। आप महान् हैं। मेरु पर्वतके समान आपका विशाल रूप है। आप लाल माला और वस्त्र धारण करते हैं। आपको नमस्कार है।

कल्पान्तके मेघोंकी भाँति जिनकी गम्भीर गर्जना और प्रलयकालीन वायुके समान प्रचण्ड वेग है, जो समुद्रको भी पी जाते, सम्पूर्ण जगत्को ग्रास बना लेते, पर्वतोंको भी चबा जाते और मुखसे आग उगलते हैं, उन भगवान् यमराजको नमस्कार है।

भगवन्! अत्यन्त घोर और अग्निके समान तेजस्वी कालरूप मृत्यु तथा बहुत-से रोग आपके पास सेवामें उपस्थित रहते हैं। आपको नमस्कार है।

आप भयानक मारी और अत्यन्त भयङ्कर महामारीके साथ रहते हैं। पापिष्ठोंके लिये आपका ऐसा ही स्वरूप है। आपको बारम्बार नमस्कार है।

वास्तवमें तो आपका मुख खिले हुए कमलके समान प्रसन्नतासे पूर्ण है। आपके नेत्रोंमें करुणा भरी है। आप पितृस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आपके केश अत्यन्त कोमल हैं और नेत्र भौंहोंकी रेखासे सुशोभित हैं। मुखके ऊपर मूँछें बड़ी सुन्दर जान पड़ती हैं। पके हुए बिम्बफलके समान लाल ओठ आपकी शोभा बढ़ाते हैं। आप

दो भुजाओंसे युक्त, सुवर्णके समान कान्तिमान् और सदा प्रसन्न रहनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

आप सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले तथा श्वेत छत्रसे सुशोभित हैं। आपके दोनों ओर दो दिव्य नारियाँ खड़ी होकर हाथोंमें सुन्दर चँवर लिये डुला रही हैं। आपको नमस्कार है।

गलेके रत्नमय हारसे आप बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं। रत्नमय कुण्डल आपके कानोंकी शोभा बढ़ाते हैं। आपके हार और भुजबंद भी रत्नके ही हैं तथा आपके किरीटमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं। आपकी कृपादृष्टि सीमाका अतिक्रमण कर जाती है। आप मित्रभावसे सबको देखते हैं। सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ आपको समृद्धिशाली बनाती हैं। आप सौभाग्यके परम आश्रय हैं तथा धर्म और अधर्मके ज्ञानमें निपुण सभासद् आपकी उपासना करते हैं। आपको नमस्कार है।

संयमनीपुरीकी सभामें शुभ्र रूपवाले धर्म, शुभ लक्षण सत्य, चन्द्रमाके समान मनोहर रूपधारी शम, दूधके समान उज्ज्वल दम तथा वर्णाश्रमजनित विशुद्ध आचार आपके पास मूर्तिमान् होकर सेवामें उपस्थित रहते हैं; आपको नमस्कार है।

आप साधुओंपर सदा स्नेह रखते, वाणीसे उनमें प्राणोंका सञ्चार करते, वचनोंसे सन्तोष देते और गुणोंसे उन्हें सर्वस्व समर्पण करते हैं। सज्जन पुरुषोंपर सदा सन्तुष्ट रहनेवाले आप धर्मराजको बारम्बार नमस्कार है।

जो सबके काल होते हुए भी शुभ कर्म करनेवाले पुरुषोंपर कृपा करते हैं, जो पुण्यात्माओंके हितैषी, सत्पुरुषोंके संगी, संयमनीपुरीके स्वामी, धर्मात्मा तथा धर्मका अनुष्ठान करनेवालोंके प्रिय हैं, उन धर्मराजको नमस्कार है।

जिसकी पीठपर लटके हुए घण्टोंकी ध्वनिसे सारी दिशाएँ गूँज उठती हैं तथा जो ऊँचे-ऊँचे सींगों और फुंकारोंके कारण अत्यन्त भीषण प्रतीत होता है, ऐसे महान् भैंसेपर जो विराजमान रहते हैं तथा जिनकी आठ बड़ी-बड़ी भुजाएँ क्रमशः नाराच, शक्ति, मुसल, खड्ग, गदा, त्रिशूल, पाश और अङ्कुशसे सुशोभित हैं, उन भगवान् यमराजको प्रणाम है।

जो चौदह सत्पुरुषोंके साथ बैठकर जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंका भलीभाँति विचार करते हैं, साक्षियोंद्वारा अनुमोदन कराकर उन्हें दण्ड देते हैं तथा सम्पूर्ण विश्वको शान्त रखते हैं, उन दक्षिण दिशाके स्वामी शान्तस्वरूप यमराजको नमस्कार है।

जो कल्याणस्वरूप, भयहारी, शौच-संतोष आदि नियमोंमें स्थित मनुष्योंके नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले, सावर्णि, शनैश्चर और वैवस्वत मनु—इन तीनोंकी माताके सौतेले पुत्र, विवस्वान् (सूर्यदेव)-के आत्मज तथा सदाचारी मनुष्योंको वर देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको नमस्कार है।

भगवन्! जब आपके दूत पापी जीवोंको दृढ़तापूर्वक बाँधकर आपके सामने उपस्थित करते हैं तब आप उन्हें यह आदेश देते हैं कि 'इन पापियोंको अनेक घोर नरकोंमें गिराकर छेद डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो, जला दो, सुखा डालो, पीस दो।' इस प्रकारकी बातें कहते हुए यमुनाजीके ज्येष्ठ भ्राता आप यमराजको मेरा प्रणाम है।

जब आप अन्तकरूप धारण करते हैं उस समय आपके गोलाकार नेत्र किनारे-किनारेसे लाल दिखायी देते हैं। आप भीमरूप होकर भय प्रदान करते हैं। टेढ़ी भौंहोंके कारण आपका मुख वक्र जान पड़ता है। आपके शरीरका रंग उस समय नीला हो जाता है तथा आप अपने निर्दयी दूतोंके द्वारा शास्त्रोक्त नियमोंका उल्लङ्घन करनेवाले पापियोंको

खूब कड़ाईके साथ धमकाते हैं। आपको सर्वदा नमस्कार है।

जिन्होंने पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा जो सदा ही अपने कर्मोंके पालनमें संलग्न रहे हैं, ऐसे लोगोंको दूरसे ही विमानपर आते देख आप दोनों हाथ जोड़े आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं। आपके नेत्र कमलके समान विशाल हैं तथा आप माता संज्ञाके सुयोग्य पुत्र हैं। आपको मेरा प्रणाम है।

जो सम्पूर्ण विश्वसे उत्कृष्ट, निर्मल, विद्वान्, जगत्के पालक, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके प्रिय, सबके शुभाशुभ कर्मोंके उत्तम साक्षी तथा समस्त संसारको शरण देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको नमस्कार है।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करके मृगशृङ्गने उदारता और करुणाके भण्डार तथा दक्षिण दिशाके स्वामी भगवान् यमका ध्यान करते हुए उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इससे भगवान् यमको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे महान् तेजस्वी रूप धारण किये मुनिके सामने प्रकट हुए। उस समय उनका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ था और किरीट, हार, केयूर तथा मणिमय कुण्डल धारण करनेवाले अनेक सेवक चारों ओरसे उनकी सेवामें उपस्थित थे।

यमराजने कहा—मुने! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आया हूँ। तुम मुझसे मनोवाञ्छित वर माँगो। मैं तुम्हें अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा।

उनकी बात सुनकर मुनीश्वर मृगशृङ्ग उठकर खड़े हो गये। यमराजको सामने उपस्थित देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उनके नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। कृतान्तको पाकर उन्होंने अपनेको सफलमनोरथ समझा और हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! इन कन्याओंको प्राणदान दीजिये। मैं आपसे बारम्बार यही याचना करता हूँ।' मुनिका कथन सुनकर धर्मराजने अदृश्यरूपसे उन ब्राह्मण-कन्याओंको उनके शरीरमें

भेज दिया। फिर तो सोकर उठे हुएकी भाँति वे कन्याएँ उठ खड़ी हुईं। अपनी बालिकाओंको सचेत होते देख माताओंको बड़ा हर्ष हुआ। कन्याएँ पहलेकी ही भाँति अपना-अपना वस्त्र पहनकर माताओंको बुला उनके साथ अपने घर गयीं।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार विप्रवर मृगशृङ्गको वरदान दे यम देवता अपने पार्षदोंके साथ अन्तर्धान हो गये। इधर ब्राह्मण भी यमराजसे वर पाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमको लौटे। जो मानव प्रतिदिन यमराजकी इस स्तुतिका पाठ करेगा, उसे कभी यम-यातना नहीं भोगनी पड़ेगी, उसके ऊपर यमराज प्रसन्न होंगे, उसकी सन्ततिका कभी अपमृत्युसे पराभव न होगा, उसे इस लोक और परलोकमें भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी तथा उसे कभी रोगोंका शिकार नहीं होना पड़ेगा।

यमलोकसे लौटी हुई कन्याओंके द्वारा वहाँकी अनुभूत बातोंका वर्णन

राजा दिलीपने पूछा—मुने! यमलोकसे लौटकर आयी हुई उन साध्वी कन्याओंने अपनी माताओं और बन्धुओंसे वहाँका वृत्तान्त कैसा बतलाया? पापियोंकी यातना और पुण्यात्माओंकी गतिके सम्बन्धमें क्या कहा? मैं पुण्य और पापके शुभ और अशुभ फलोंको विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! कन्याओंने अपनी माताओं और बन्धुओंसे पुण्य-पापके शुभाशुभ फलोंके विषयमें जो कुछ कहा था, वह ज्यों-का-त्यों तुम्हें बतलाता हूँ।

कन्याओंने कहा—माताओ! यमलोक बड़ा ही घोर और भय

उत्पन्न करनेवाला है। वहाँ सर्वदा चारों प्रकारके जीवोंको विवश होकर जाना पड़ता है। गर्भमें रहनेवाले अथवा जन्म लेनेवाले शिशु, बालक, तरुण, अधेड़, बूढ़े, स्त्री, पुरुष और नपुंसक—सभी तरहके जीवोंको वहाँ जाना होता है। वहाँ चित्रगुप्त आदि समदर्शी एवं मध्यस्थ सत्पुरुष मिलकर देहधारियोंके शुभ और अशुभ फलका विचार करते हैं। इस लोकमें जो शुभ कर्म करनेवाले, कोमलहृदय तथा दयालु पुरुष हैं, वे सौम्य मार्गसे यमलोकमें जाते हैं। नाना प्रकारके दान और व्रतोंमें संलग्न रहनेवाले स्त्री-पुरुषोंसे सूर्यनन्दन यमकी नगरी भरी है। माघस्नान करनेवाले लोग वहाँ विशेषरूपसे शोभित होते हैं। धर्मराज उनका अधिक सम्मान करते हैं। वहाँ उनके लिये सब प्रकारकी भोगसामग्री सुलभ होती है। माघस्नानमें मन लगानेवाले लोगोंके सैकड़ों, हजारों विचित्र-विचित्र विमान वहाँ शोभा पाते हैं। इन पुण्यात्मा जीवोंको विमानपर बैठकर आते देख सूर्यनन्दन यम अपने आसनसे उठकर खड़े हो जाते हैं और अपने पार्षदोंके साथ जाकर उन सबकी अगवानी करते हैं। फिर स्वागतपूर्वक आसन दे, पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन कर प्रिय वचनोंमें कहते हैं—'आपलोग अपने आत्माका कल्याण करनेवाले महात्मा हैं, अतएव धन्य हैं; क्योंकि आपने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये पुण्यका उपार्जन किया है। अत: आप इस विमानपर बैठकर स्वर्गको जाइये। स्वर्गलोककी कहीं तुलना नहीं है, वह सब प्रकारके दिव्य भोगोंसे परिपूर्ण है।' इस प्रकार उनकी अनुमति ले पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गलोकमें जाते हैं।

माताओ! तथा बन्धुजन! अब हम वहाँके पापी जीवोंके कष्टका वर्णन करती हैं, आप सब लोग धैर्य धारण करके सुनें। जो क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले और दान न देनेवाले पापी जीव हैं, वे वहाँ यमराजके घरमें अत्यन्त भयंकर दक्षिणमार्गसे जाते हैं। यमराजका नगर अनेक

रूपोंमें स्थित है, उसका विस्तार चारों ओरसे छियासी हजार योजन समझना चाहिये। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंको वह बहुत निकट-सा जान पड़ता है, किन्तु भयंकर मार्गसे जानेवाले पापी जीवोंके लिये वह अत्यन्त दूर है। वह मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे भरा होता है और कहीं रेत एवं कंकड़ोंसे। कहीं पत्थरोंके ऐसे टुकड़े बिछे होते हैं, जिनका किनारा छुरेंकी धारके समान तीखा होता है। कहीं बहुत दूरतक कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है। कहीं घातक अङ्कुर उगे होते हैं और कहीं-कहीं लोहेकी सुईके समान नुकीले कुशोंसे सारा मार्ग ढका होता है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं बीच रास्तेमें वृक्षोंसे भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारेपर भारी जल-प्रपातके कारण अत्यन्त दुर्गम जान पड़ते हैं। कहीं रास्तेपर दहकते हुए अँगारे बिछे रहते हैं। ऐसे मार्गसे पापी जीवोंको दुःखित होकर जाना पड़ता है। कहीं ऊँचे-नीचे गड्ढे, कहीं फिसला देनेवाले चिकने ढेले, कहीं खूब तपी हुई बालू और कहीं तीखी कीलोंसे वह मार्ग व्याप्त रहता है। कहीं-कहीं अनेक शाखाओंमें फैले हुए सैकड़ों वन और दुःखदायी अन्धकार हैं, जहाँ कोई सहारा देनेवाला भी नहीं रहता। कहीं तपे हुए लोहेके काँटेदार वृक्ष, कहीं दावानल, कहीं तपी हुई शिला और कहीं हिमसे वह मार्ग आच्छादित रहता है। कहीं ऐसी बालू भरी रहती है, जिसमें चलनेवाला जीव कण्ठतक धँस जाता है और बालू कानके पासतक आ जाती है। कहीं गरम जल और कहीं कंडोंकी आगसे यमलोकका मार्ग व्याप्त रहता है। कहीं धूल मिली हुई प्रचण्ड वायुका बवंडर उठता है और कहीं बड़े-बड़े पत्थरोंकी वर्षा होती है। उन सबकी पीड़ा सहते हुए पापी जीव यमलोकमें जाते हैं। रेतकी भारी वृष्टिसे सारा अङ्ग भर जानेके कारण पापी जीव रोते हैं। महान् मेघोंकी भयङ्कर गर्जनासे वे बारम्बार

थर्रा उठते हैं। कहीं तीखे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होती है, जिससे उनके सारे शरीरमें घाव हो जाते हैं। तत्पश्चात् उनके ऊपर नमक मिले हुए पानीकी मोटी धाराएँ बरसायी जाती हैं। इस प्रकार कष्ट सहन करते हुए उन्हें जाना पड़ता है। कहीं अत्यन्त ठंडी, कहीं रूखी और कहीं कठोर वायुका सब ओरसे आघात सहते हुए पापी जीव सूखते और रोते हैं। इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही भयङ्कर है। वहाँ राहखर्च नहीं मिलता। कोई सहारा देनेवाला नहीं रहता। वह सब ओरसे दुर्गम और निर्जन है। वहाँ और कोई मार्ग आकर नहीं मिला है। वह बहुत बड़ा और आश्रयरहित है। वहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार भरा रहता है। वह महान् कष्टप्रद और सब प्रकारके दुःखोंका आश्रय है। ऐसे ही मार्गसे यमकी आज्ञाका पालन करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर यमदूतोंद्वारा समस्त पाप-परायण मूढ़ जीव बलपूर्वक लाये जाते हैं।

वे एकाकी, पराधीन तथा मित्र और बन्धु-बान्धवोंसे रहित होते हैं। अपने कर्मोंके लिये बारम्बार शोक करते और रोते हैं। उनका आकार प्रेत-जैसा होता है। उनके शरीरपर वस्त्र नहीं रहता। कण्ठ, ओठ और तालू सूखे होते हैं। वे शरीरसे दुर्बल और भयभीत होते हैं तथा क्षुधाकी आगसे जलते रहते हैं। बलोन्मत्त यमदूत किन्हीं-किन्हीं पापी मनुष्योंको चित सुलाकर उनके पैरोंमें साँकल बाँध देते हैं और उन्हें घसीटते हुए खींचते हैं। कितने ही दूसरे जीव ललाटमें अङ्कुश चुभाये जानेके कारण क्लेश भोगते हैं। कितनोंकी बाँहें पीठकी ओर घुमाकर बाँध दी जाती और उनके हाथोंमें कील ठोंक दी जाती है; साथ ही पैरोंमें बेड़ी भी पड़ी होती है। इस दशामें भूखका कष्ट सहन करते हुए उन्हें जाना पड़ता है। कुछ दूसरे जीवोंके गलेमें रस्सी बाँधकर उन्हें पशुओंकी भाँति घसीटा जाता है और वे अत्यन्त दुःख उठाते रहते हैं। कितने ही दुष्ट मनुष्योंकी जिह्वामें रस्सी बाँधकर

उन्हें खींचा जाता है। किन्हींकी कमरमें भी रस्सी बाँधी जाती है और उन्हें गरदनियाँ देकर इधर-उधर ढकेला जाता है। यमदूत किन्हींकी नाक बाँधकर खींचते हैं और किन्हींके गाल तथा ओठ छेदकर उनमें रस्सी डाल देते और उन्हें खींचकर ले जाते हैं। तपे हुए सींकचोंसे कितने ही पापियोंके पेट छिदे होते हैं। कुछ लोगोंके कानों और ठोढ़ियोंमें छेद करके उनमें रस्सी डालकर खींचा जाता है। किन्हींके पैरों और हाथोंके अग्रभाग काट लिये जाते हैं। किन्हींके कण्ठ, ओठ और तालुओंमें छेद कर दिया जाता है। किन्हीं-किन्हींके अण्डकोश कट जाते हैं और कुछ लोगोंके समस्त अङ्गोंकी सन्धियाँ काट दी जाती हैं। किन्हींको भालोंसे छेदा जाता है, कुछ बाणोंसे घायल किये जाते हैं और कुछ लोगोंको मुद्गरों तथा लोहेके डंडोंसे बारम्बार पीटा जाता है और वे निराश्रय होकर चीखते-चिल्लाते हुए इधर-उधर भागा करते हैं। प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिवाले भाँति-भाँतिके भयङ्कर आरों और भिन्दिपालोंसे उन्हें विदीर्ण किया जाता है और वे पापी जीव पीब तथा रक्त बहाते हुए घावसे पीड़ित होते और कीड़ोंसे डँसे जाते हैं। इस प्रकार उन्हें विवश करके यमलोकमें ले जाया जाता है। वे भूख-प्याससे पीड़ित होकर अन्न और जल माँगते हैं, धूपसे बचनेको छायाके लिये प्रार्थना करते हैं और शीतसे व्यथित होकर तापनेके लिये अग्नि माँगते हैं। जिन्होंने उक्त वस्तुओंका दान नहीं किया होता, वे उस पाथेयरहित पथपर इसी प्रकार कष्ट सहते हुए यात्रा करते हैं। इस प्रकार अत्यन्त दुःखमय मार्गसे चलकर जब वे प्रेतलोकमें पहुँचते हैं तब दूत उन्हें यमराजके आगे उपस्थित करते हैं। उस समय वे पापी जीव यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं। वहाँ असंख्यों भयानक यमदूत, जो काजलके समान काले, महान् वीर और अत्यन्त क्रूर होते हैं, हाथोंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र

लिये मौजूद रहते हैं। ऐसे ही परिवारके साथ बैठे हुए यमराज तथा चित्रगुप्तको पापी जीव अत्यन्त भयङ्कर रूपमें देखते हैं।

उस समय भगवान् यमराज और चित्रगुप्त उन पापियोंको धर्मयुक्त वाक्योंसे समझाते हुए बड़े जोर-जोरसे फटकारते हैं। वे कहते हैं—'ओ खोटे कर्म करनेवाले पापियो! तुमने दूसरोंके धन हड़प लिये हैं और सुन्दर रूपके घमण्डमें आकर परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार किया है। मनुष्य अपने-आप जो कुछ कर्म करता है, उसे स्वयं ही भोगता है; फिर तुमने अपने ही भोगनेके लिये पापकर्म क्यों किया? और अब अपने कर्मोंकी आगमें जलकर इस समय तुमलोग संतप्त क्यों हो रहे हो? भोगो अपने उन कर्मोंको। इसमें दूसरे किसीका दोष नहीं है। ये राजालोग भी अपने भयंकर कर्मोंसे प्रेरित हो मेरे पास आये हैं; इन्हें अपनी खोटी बुद्धि और बलका बड़ा घमण्ड था। अरे, ओ दुराचारी राजाओ! तुमलोग प्रजाका सर्वनाश करनेवाले हो। अरे, थोड़े समयतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने पाप क्यों किया? राज्यके लोभमें पड़कर मोहवश बलपूर्वक अन्यायसे जो तुमने प्रजाजनोंको दण्ड दिया है, इस समय उसका फल भोगो। कहाँ है वह राज्य और कहाँ गयी वह रानी, जिसके लिये तुमने पापकर्म किया था? अब तो सबको छोड़कर तुम अकेले ही यहाँ खड़े हो। यहाँ वह बल नहीं दिखायी देता, जिससे तुमने प्रजाओंका विध्वंस किया। इस समय यमदूतोंकी मार पड़नेपर कैसा लग रहा है?' इस तरह नाना प्रकारके वचनोंद्वारा यमराजके उलाहना देनेपर वे राजा अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं।

इस प्रकार राजाओंसे धर्मकी बात कहकर धर्मराज उनके पापपङ्ककी शुद्धिके लिये अपने दूतोंसे इस प्रकार कहते हैं—'ओ चण्ड! ओ महाचण्ड!! तुम इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और

क्रमशः नरककी आगमें डालकर इन्हें पापोंसे शुद्ध करो।' तब वे दूत शीघ्र ही उठकर राजाओंके पैर पकड़ लेते हैं और उन्हें बड़े वेगसे आकाशमें घुमाकर ऊपर फेंकते हैं। तत्पश्चात् उन्हें पूरा बल लगाकर तपायी हुई शिलापर बड़े वेगसे पटकते हैं, मानो किसी महान् वृक्षपर वज्रसे प्रहार करते हों। शिलापर गिरनेसे उनका शरीर चूर-चूर हो जाता है, रक्तके स्रोत बहने लगते हैं और जीव अचेत एवं निश्चेष्ट हो जाता है। तदनन्तर वायुका स्पर्श होनेपर वह धीरे-धीरे फिर साँस लेने लगता है। उसके बाद पापकी शुद्धिके लिये उसे नरकके समुद्रमें डाल दिया जाता है। इस पृथ्वीके नीचे नरककी अट्ठाईस कोटियाँ हैं। वे सातवें तलके अन्तमें भयङ्कर अन्धकारके भीतर स्थित हैं। उनमें पहली कोटिका नाम घोरा है। उसके नीचे सुघोराकी स्थिति है। तीसरी अतिघोरा, चौथी महाघोरा और पाँचवीं कोटि घोररूपा है। छठीका नाम तरलतारा, सातवींका भयानका, आठवींका कालरात्रि और नवींका भयोत्कटा है। उसके नीचे दसवीं कोटि चण्डा है। उसके भी नीचे महाचण्डा है। बारहवींका नाम चण्डकोलाहला है। उसके बाद प्रचण्डा, नरनायिका, कराला, विकराला और वज्रा है। [तीन अन्य नरकोंके साथ] वज्राकी बीसवीं संख्या है। इनके सिवा त्रिकोणा, पञ्चकोणा, सुदीर्घा, परिवर्तुला, सप्तभौमा, अष्टभौमा, दीप्ता और माया—ये आठ और हैं। इस प्रकार नरककी कुल अट्ठाईस कोटियाँ बतायी गयी हैं।

उपर्युक्त कोटियोंमेंसे प्रत्येकके पाँच-पाँच नायक हैं। उनके नाम सुनो। उनमें पहला रौरव है, जहाँ देहधारी जीव रोते हैं। दूसरा महारौरव है, जिसकी पीड़ाओंसे बड़े-बड़े जीव भी रो देते हैं। तीसरा तम, चौथा शीत और पाँचवाँ उष्ण है। ये प्रथम कोटिके पाँच नायक माने गये हैं। इनके सिवा सुघोर, सुतम, तीक्ष्ण, पद्म, सञ्जीवन, शठ,

महामाय, अतिलोम, सुभीम, कटङ्कट, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महापद्म, सुचक्र, कालसूत्र, प्रतर्दन, सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रदीपक, कुम्भीपाक, सुपाक, अतिदारुणकूप, अङ्गारराशि, भवन, असृक्पूयह्रद, विरामय, तुण्डशकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजतु, पङ्कलेप, पूतिमांस, द्रव, त्रपु, उच्छ्वास, निरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहानाद, प्रभाव, सुप्रभावन, ऋक्ष, मेष, वृष, शल्य, सिंहानन, व्याघ्रानन, मृगानन, सूकरानन, श्वानन, महिषानन, वृकानन, मेषवरानन, ग्राह, कुम्भीर, नक्र, सर्प, कूर्म, वायस, गृध्र, उलूक, जलूका, शार्दूल, कपि, कर्कट, गण्ड, पूतिवक्त्र, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणाधूम, तुषाग्नि, कृमिनिचय, अमेय, अप्रतिष्ठ, रुधिरान्ध, श्वभोजन, लालाभक्ष, आत्मभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, सङ्कष्ट, सुबिलास, सुकट, संकट, कट, पुरीष, कटाह, कष्टदायिनी वैतरणी नदी, सुतप्त लोहशङ्कु, अयःशङ्कु, प्रपूरण, घोर, असितालवन, अस्थिभङ्ग, प्रपीड़क, नीलयन्त्र, अतसीयन्त्र, इक्षुयन्त्र, कूट, अंशप्रमर्दन, महाचूर्णी, सुचूर्णी, तप्तलोहमयी शिला, क्षुरधाराभपर्वत, मलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अन्धकूप, पूयकूप, शातन, मुसलोलूखल, यन्त्रशिला, शकटलाङ्गल, तालपत्रासिवन, महामशकमण्डप, सम्मोहन, अतिभङ्ग, तप्तशूल, अयोगुड, बहुदुःख, महादुःख, कश्मल, शमल, हालाहल, विरूप, भीमरूप, भीषण, एकपाद, द्विपाद, तीव्र तथा अवीचि। यह अवीचि अन्तिम नरक है। इस प्रकार ये क्रमशः पाँच-पाँचके अट्ठाईस समुदाय माने गये हैं। एक-एक समुदाय एक-एक कोटिका नायक है।

रौरवसे लेकर अवीचितक कुल एक सौ चालीस नरक माने गये हैं। इन सबमें पापी मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार डाले जाते हैं और जबतक भाँति-भाँतिकी यातनाओंद्वारा उनके कर्मोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता तबतक वे उसीमें पड़े रहते हैं। जैसे सुवर्ण आदि

धातु जबतक उनकी मैल न जल जाय तबतक आगमें तपाये जाते हैं, उसी प्रकार पापी पुरुष पापक्षय होनेतक नरकोंकी आगमें शुद्ध किये जाते हैं। इस प्रकार क्लेश सहकर जब ये प्रायः शुद्ध हो जाते हैं तब शेष कर्मोंके अनुसार पुनः इस पृथ्वीपर आकर जन्म ग्रहण करते हैं। तृण और झाड़ी आदिके भेदसे नाना प्रकारके स्थावर होकर वहाँके दुःख भोगनेके पश्चात् पापी जीव कीड़ोंकी योनिमें जन्म लेते हैं। फिर कीटयोनिसे निकलकर क्रमशः पक्षी होते हैं। पक्षीरूपसे कष्ट भोगकर मृगयोनिमें उत्पन्न होते हैं। वहाँके दुःख भोगकर अन्य पशुयोनिमें जन्म लेते हैं। फिर क्रमशः गोयोनिमें आकर मरनेके पश्चात् मनुष्य होते हैं।

माताओ! हमने यमलोकमें इतना ही देखा है। वहाँ पापीको बड़ी भयानक यातनाएँ होती हैं। वहाँ ऐसे-ऐसे नरक हैं जो न कभी देखे गये थे और न कभी सुने ही गये थे। वह सब हमलोग न तो जान सकती हैं और न देख ही सकती हैं।

माताएँ बोलीं—बस, बस, इतना ही बहुत हुआ। अब रहने दो। इन नरक-यातनाओंको सुनकर हमारे सारे अङ्ग शिथिल हो गये हैं। हृदयमें भय छा गया है। बारम्बार उनकी याद आ जानेसे हमारा मन सुध-बुध खो बैठता है। आन्तरिक भयके उद्रेकसे हमलोगोंके शरीरमें रोमाञ्च हो आया है।

कन्याओंने कहा—माताओ! इस परम पवित्र भारतवर्षमें जो हमें जन्म मिला है, यह अत्यन्त दुर्लभ है। इसमें भी हजार-हजार जन्म लेनेके बाद पुण्यराशिके सञ्चयसे कदाचित् कभी जीव मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है; परन्तु जो माघस्नानमें तत्पर रहनेवाले हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उन्हें यहाँ ही परम मोक्ष मिल जाता है और पर्याप्त भोगसामग्री भी सुलभ होती है। भारतवर्षको कर्मभूमि कहा गया है। अन्य जितनी भूमियाँ हैं वे भोगभूमि मानी जाती हैं। यहाँ यति

तपस्या और याजक यज्ञ करते हैं तथा यहीं पारलौकिक सुखके लिये श्रद्धापूर्वक दान दिये जाते हैं। कितने ही धन्य पुरुष यहीं माघस्नान करते तथा तपस्या करके अपने कर्मोंके अनुसार ब्रह्मा, इन्द्र, देवता और मरुद्गणोंका पद प्राप्त करते हैं। यह भारतवर्ष सभी देशोंसे श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि यहीं मनुष्य धर्म तथा स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धि कर सकते हैं। इस पवित्र भारतदेशमें क्षणभङ्गुर मानवजीवनको पाकर जो अपने आत्माका कल्याण नहीं करता, उसने अपने-आपको ठग लिया। मनुष्योंमें भी अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर जो अपना कल्याण नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा। कितने ही कालके बाद जीव अत्यन्त दुर्लभ मानवजीवन प्राप्त करता है; इसे पाकर ऐसा करना चाहिये जिससे कभी नरकमें न जाना पड़े। देवतालोग भी यह अभिलाषा करते हैं कि हमलोग कब भारतवर्षमें जन्म लेकर माघमासमें प्रातःकाल किसी नदी या सरोवरके जलमें गोते लगायेंगे। देवता यह गीत गाते हैं कि जो लोग देवत्वके पश्चात् स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके मार्गभूत भारतवर्षके भूभागमें मनुष्य-जन्म धारण करते हैं, वे धन्य हैं। हम नहीं जानते कि स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले अपने पुण्यकर्मके क्षीण होनेपर किस देशमें हमें पुनः देह धारण करना होगा। जो भारतवर्षमें जन्म लेकर सब इन्द्रियोंसे युक्त हैं—किसी भी इन्द्रियसे हीन नहीं हैं, वे ही मनुष्य धन्य हैं; अतः माताओ! तुम भय मत करो, भय मत करो। आदरपूर्वक धर्मका अनुष्ठान करो। जिनके पास दानरूपी राहखर्च होता है, वे यमलोकके मार्गपर सुखसे जाते हैं; अन्यथा उस पाथेयरहित पथपर जीवको क्लेश भोगना पड़ता है। ऐसा जानकर मनुष्य पुण्य करे और पाप छोड़ दे। पुण्यसे देवत्वकी प्राप्ति होती है और अधर्मसे नरकमें गिरना पड़ता है। जो किञ्चित् भी देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये हैं, वे भयङ्कर यमलोकका दर्शन नहीं करते।

बान्धवो! यदि तुमलोग संसार-बन्धनसे छुटकारा पाना चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव श्रीनारायणकी आराधना करो। यह चराचर जगत् आपलोगोंकी भावना—संकल्पसे ही निर्मित है, इसे बिजलीकी तरह चञ्चल—क्षणभङ्गुर समझकर श्रीजनार्दनका पूजन करो। अहंकार विद्युत्की रेखाके समान व्यर्थ है, इसे कभी पास न आने दो। शरीर मृत्युसे जुड़ा हुआ है, जीवन भी चञ्चल है, धन राजा आदिसे प्राप्त होनेवाली बाधाओंसे परिपूर्ण है तथा सम्पत्तियाँ क्षणभङ्गुर हैं। माताओ! क्या तुम नहीं जानतीं, आधी आयु तो नींदमें चली जाती है? कुछ आयु भोजन आदिमें समाप्त हो जाती है। कुछ बालकपनमें, कुछ बुढ़ापेमें और कुछ विषय-भोगोंके सेवनमें ही बीत जाती है; फिर कितनी आयु लेकर तुम धर्म करोगी। बचपन और बुढ़ापेमें तो भगवान्के पूजनका अवसर नहीं प्राप्त होता; अतः इसी अवस्थामें अहङ्कारशून्य होकर धर्म करो। संसाररूपी भयङ्कर गड्ढेमें गिरकर नष्ट न हो जाओ। यह शरीर, मृत्युका घर है तथा आपत्तियोंका सर्वश्रेष्ठ स्थान है; इतना ही नहीं, यह रोगोंका भी निवासस्थान है और मल आदिसे भी अत्यन्त दूषित रहता है। माताओ! फिर किसलिये इसे स्थिर समझकर तुम पाप करती हो। यह संसार निःसार है और नाना प्रकारके दुःखोंसे भरा है। इसपर विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि एक दिन तुम्हारा निश्चय ही नाश होनेवाला है। बान्धवो! तुम सब लोग सुनो। हम बिलकुल सच्ची बात बता रही हैं। शरीरका नाश बिलकुल निकट है; अतः श्रीजनार्दनका पूजन अवश्य करना चाहिये। सदा ही श्रीविष्णुकी आराधना करते रहो। यह मानव-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। बन्धुओ! स्थावर आदि योनियोंमें अरबों-खरबों बार भटकनेके बाद किसी तरह मनुष्यका शरीर प्राप्त होता है। मनुष्य होनेपर भी देवताओंके पूजन और दानमें मन लगना

तो और भी कठिन है। माताओ! योगबुद्धि सबसे दुर्लभ है। जो दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर सदा ही श्रीहरिका पूजन नहीं करता, वह आप ही अपना विनाश करता है। उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा? तुमलोग दम्भका आचरण छोड़कर चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। हमलोग बारम्बार भुजाएँ उठाकर तुम्हारे हितकी बात कहती हैं। सर्वथा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये और मनुष्योंके साथ ईर्ष्याका भाव छोड़ देना चाहिये। सबके धारण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए तुम सब लोग कैसे पार जाओगे? माताओ! अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता? हमारी यह बात सुनो—जो प्रतिदिन तन्मय होकर भगवान् गोविन्दके गुणोंका गान तथा नामोंका सङ्कीर्तन सुनते हैं, उन्हें वेदोंसे, तपस्यासे, शास्त्रोक्त दक्षिणावाले यज्ञोंसे, पुत्र और स्त्रियोंसे, संसारके कृत्योंसे तथा घर, खेत और बन्धु-बान्धवोंसे क्या लेना है? इसलिये तुमलोग भय छोड़कर श्रीकेशवकी आराधना करो। शालग्रामशिलाका निर्मल एवं शुद्ध चरणामृत पीओ तथा भगवान् विष्णुके दिन—एकादशीको उपवास किया करो।

जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, उस समय प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करो; साथ ही पतिकी सेवामें लगी रहो। नरकका भय तो तुम्हें दूरसे ही छोड़ देना चाहिये; क्योंकि सब पापोंका नाश करनेवाली परम पवित्र एकादशी तिथि प्रत्येक पक्षमें आती है। फिर तुम्हें नरकसे भय क्यों हो रहा है? घरसे बाहरके जलमें स्नान करनेसे पुण्य प्रदान करनेवाला माघ-मास भी प्रतिवर्ष आया करता है। फिर तुम्हें नरकसे भय क्यों होता है।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! वे कन्याएँ अपनी माताओंसे इस प्रकार कहकर पुनः माघस्नान, उपवास आदि व्रत, धर्म तथा दान करने लगीं।
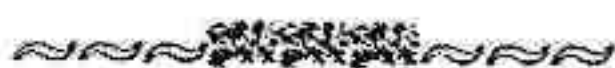
महात्मा पुष्करके द्वारा नरकमें पड़े हुए जीवोंका उद्धार

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! माघस्नान और उपवास आदि महान् पुण्य करनेवाले मनुष्य इसी प्रकार दिव्य लोकोंमें जाते-आते रहते हैं। पुण्य ही सर्वत्र आने-जानेमें कारण है। पूर्वकालमें विप्रवर पुष्कर भी यमलोकमें गये थे और वहाँ बहुत-से नारकीय जीवोंको नरकसे निकालकर फिर यहीं आ पूर्ववत् अपने घरमें रहने लगे। त्रेतायुगमें जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे, तभी एक समय किसी ब्राह्मणका पुत्र मरकर यमलोकमें गया और पुनः वह जी उठा। क्या यह बात तुमने नहीं सुनी है? देवकीनन्दन श्रीकृष्णने अपने गुरु सान्दीपनिके पुत्रको, जिसे बहुत दिन पहले ही ग्राहने अपना ग्रास बना लिया था, पुनः यमलोकसे ले आकर गुरुको अर्पण किया था। इसी प्रकार और भी कई मनुष्य यमलोकसे लौट आये हैं। इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अच्छा बताओ, अब और क्या सुनना चाहते हो?

दिलीपने पूछा—मुने! पुष्कर नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण कहाँके रहनेवाले थे? वे कैसे यमलोकमें आये और किस प्रकार उन्होंने नरकसे पापियोंका उद्धार किया?

वसिष्ठजी बोले—राजन्! मैं महात्मा पुष्करके चरित्रका वर्णन करता हूँ। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। तुम सावधान होकर सुनो। बुद्धिमान् पुष्कर नन्दिग्रामके निवासी थे। वे सदा अपने धर्मके अनुष्ठानमें लगे रहनेवाले और सब प्राणियोंके हितैषी थे। सदा माघस्नान और स्वाध्यायमें तत्पर रहते तथा समयपर अनन्य भावसे श्रीविष्णुकी आराधना किया करते थे। महायोगी पुष्कर अपने कुटुम्बके साथ रहते और नित्य अग्निहोत्र करते थे। राजन्, वे अप्रमेय! हरे! विष्णो! कृष्ण! दामोदर! अच्युत! गोविन्द! अनन्त! देवेश्वर! इत्यादि रूपसे

केवल भगवन्नामोंका कीर्तन करते थे। महामते! देवताका आराधन छोड़कर और किसी काममें उन ब्राह्मण देवताका मन स्वप्नमें भी नहीं लगता था। एक दिन सूर्यनन्दन यमराजने अपने भयङ्कर दूतोंको आज्ञा दी—'जाओ, नन्दिग्राम-निवासी पुष्कर नामक ब्राह्मणको यहाँ पकड़ ले आओ।' यह आदेश सुनकर और यमराजके बताये हुए पुष्करको न पहचानकर वे इन महात्मा पुष्करको ही यमलोकमें पकड़ लाये। ब्राह्मण पुष्करको आते देख यमराज मन-ही-मन भयभीत हो गये और आसनसे उठकर खड़े हो गये। फिर मुनिको आसनपर बिठाकर उन्होंने दूतोंको फटकारा—'तुमलोगोंने यह क्या किया? मैंने तो दूसरे पुष्करको लानेके लिये कहा था। तुमलोगोंके कितने पापपूर्ण विचार हैं। भला, इन सब धर्मोंके ज्ञाता, विशेषतः भगवान् विष्णुके भक्त, सदा माघस्नान करनेवाले और उपवास-परायण महात्मा पुरुषको यहाँ मेरे समीप क्यों ले आये?'

दूतोंको इस प्रकार डाँट बताकर प्रेतराज यमने पुष्करसे कहा—'ब्रह्मन्! तुम्हारे पुत्र और स्त्री आदि सब बान्धव बहुत व्याकुल होकर रो रहे हैं; अतः तुम भी अभी जाओ।' तब पुष्करने यमसे कहा—'भगवन्! जहाँ पापी पुरुष यातनामय शरीर धारण करके कष्ट भोगते हैं, उन सब नरकोंको मैं देखना चाहता हूँ। यह सुनकर सूर्यकुमार यमने पुष्करको सैकड़ों और हजारों नरक दिखलाये। पुष्करने देखा, पापी जीव नरकोंमें पड़कर बड़ा कष्ट भोगते हैं। कोई शूलीपर चढ़े हैं, किन्हींको व्याघ्र खा रहा है जिससे वे अत्यन्त दुःखित हैं। कोई तपी हुई बालूपर जल रहे हैं। किन्हींको कीड़े खा रहे हैं। कोई जलते हुए घड़ेमें डाल दिये गये हैं। कोई कीड़ोंसे पीड़ित हैं। कोई असिपत्रवनमें दौड़ रहे हैं, जिससे उनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। किन्हींको आरोंसे चीरा जा रहा है। कोई कुल्हाड़ोंसे काटे जाते हैं।

किन्हींको खारी कीचड़में कष्ट भोगना पड़ता है। किन्हींको सूई चुभो-चुभोकर गिराया जाता है और कोई सर्दीसे पीड़ित हो रहे हैं। उनको तथा अन्य जीवोंको नरकमें पड़कर यातना भोगते देख पुष्करको बड़ा दुःख हुआ। वे उनसे बोले—'क्या आपलोगोंने पूर्वजन्ममें कोई पुण्य नहीं किया था, जिससे यहाँ यातनामें पड़कर आप सदा दुःख भोगते हैं?'

नरकके जीवोंने कहा—विप्रवर! हमने पृथ्वीपर कोई पुण्य नहीं किया था। इसीसे इस यातनामें पड़कर जलते और बहुत कष्ट उठाते हैं। हमने परायी स्त्रियोंसे अनुराग किया, दूसरोंके धन चुराये, अन्य जीवोंकी हिंसा की, बिना अपराध ही दूसरोंपर लाञ्छन लगाये, ब्राह्मणोंकी निन्दा की और जिनके भरण-पोषणका भार अपने ऊपर था, उनके भोजन किये बिना ही हम सबसे पहले भोजन कर लेते थे। इन्हीं सब पापोंके कारण हमलोग इस नरकाग्निमें दग्ध हो रहे हैं। प्यासी गौएँ जब जलकी ओर दौड़ती हुई जातीं तो हम सदा उनके पानी पीनेमें विघ्न डाल दिया करते थे। गौओंको कभी खिलाते-पिलाते नहीं थे, तो भी उनका दूध दुहकर पेट पालनेमें लगे रहते थे। याचकोंको दान देनेमें लगे हुए धार्मिक पुरुषोंके कार्यमें रोड़े अटकाया करते थे। अपनी स्त्रियोंको त्याग दिया था। व्रतसे भ्रष्ट हो गये थे। दूसरेके अन्नमें ही सदा रुचि रखते थे। पर्वोंपर भी स्त्रियोंके साथ रमण करते थे। ब्राह्मणोंको देनेकी प्रतिज्ञा करके भी लोभवश उन्हें दान नहीं दिया। हम धरोहर हड़प लेते थे, मित्रोंसे द्रोह करते तथा झूठी गवाही देते रहते थे। इन्हीं सब पापोंके कारण आज हम दग्ध हो रहे हैं।

पुष्करने कहा—क्या आपलोगोंने भगवान् जनार्दनका एक बार भी पूजन नहीं किया? इसीसे आप ऐसी भयानक दशाको पहुँचे हैं। जिन्होंने समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया है, उन मनुष्योंका मोक्षतक हो सकता है; फिर पापक्षयकी तो बात

ही क्या है? प्राय: आपलोगोंने श्रीपुरुषोत्तमके चरणोंमें मस्तक नहीं झुकाया है। इसीसे आपको इस अत्यन्त भयङ्कर नरककी प्राप्ति हुई है। अब यहाँ हाहाकार करनेसे क्या लाभ? निरन्तर भगवान् श्रीहरिका स्मरण कीजिये। वे श्रीविष्णु समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। मैं भी यहाँ जगदीश्वरके नामोंका कीर्तन करता हूँ। वे नाम निश्चय ही आपका कल्याण करेंगे।

नरकके जीवोंने कहा—ब्रह्मन्! हमारा अन्तःकरण अपवित्र है। हम अपने पापसे सन्तप्त हैं। ऐसे समयमें आपके शरीरको छूकर बहनेवाली वायु हमें परम आनन्द प्रदान करती है। धर्मात्मन्! आप कुछ देरतक यहाँ ठहरिये, जिससे हम दु:खी जीवोंको क्षणभर भी तो सुख मिल सके। ब्रह्मन्! आपके दर्शनसे भी हमें बड़ा सन्तोष होता है। अहो! हम पापी जीवोंपर भी आपकी कितनी दया है।

यमराजने कहा—धर्मके ज्ञाता पुष्कर! तुमने नरक देख लिये। अब जाओ। तुम्हारी पत्नी दु:ख और शोकमें डूबकर रो रही है।

पुष्कर बोले—भगवन्! जबतक इन दु:खी जीवोंकी आवाज कानोंमें पड़ती है तबतक कैसे जाऊँ। जानेपर भी वहाँ मुझे क्या सुख मिलेगा? आपके किंकरोंकी मार खाकर जो आगके ढेरमें गिर रहे हैं, उन नारकीय जीवोंकी यह दिन-रातकी पुकार सुनिये। कितने ही जीवोंके मुखसे निकली हुई यह ध्वनि सुनायी देती है—'हाय! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' समस्त भूतोंके आत्मा और सबके ईश्वर सर्वव्यापी श्रीहरिकी मैं नित्य आराधना करता हूँ। इस सत्यके प्रभावसे नारकीय जीव तत्काल मुक्त हो जायँ। भगवान् विष्णु सबमें स्थित हैं और सब कुछ भगवान् विष्णुमें स्थित है। इस सत्यसे नारकीय जीवोंका तुरंत क्लेशसे छुटकारा हो जाय। हे कृष्ण! हे अच्युत! हे जगन्नाथ! हे हरे! हे विष्णो! हे जनार्दन! यहाँ

नरकके भीतर यातनामें पड़े हुए इन सब जीवोंकी रक्षा कीजिये।

पुष्करके द्वारा उच्चारित भगवान्‌के नाम सुनकर वहाँ नरकमें पड़े हुए सभी पापी तत्काल उससे छुटकारा पा गये। वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ पुष्करसे बोले—'ब्रह्मन्! हम नरकसे मुक्त हो गये। इससे संसारमें आपकी अनुपम कीर्तिका विस्तार हो।' यमराजको भी इस घटनासे बड़ा विस्मय हुआ। वे पुष्करके पास जा प्रसन्नचित्त होकर वरदानके द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करने लगे। वे बोले—'धर्मात्मन्! तुम पृथ्वीपर जाकर सदा वहीं रहो। तुम्हें और तुम्हारे सुहृदोंको भी मुझसे कोई भय नहीं है। जो मनुष्य तुम्हारे माहात्म्यका प्रतिदिन स्मरण करेगा, उसे मेरी कृपासे अपमृत्युका भय नहीं होगा।'

वसिष्ठजी कहते हैं—यमराजके यों कहनेपर पुष्कर पृथ्वीपर लौट आये और यहाँ पूर्ववत् स्वस्थ हो भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हुए रहने लगे। राजन्! मेरे द्वारा कहे हुए महात्मा पुष्करके इस माहात्म्यको जो सुनता है, उसके सारे पापोंका नाश हो जाता है। भगवान् विष्णुका नाम-कीर्तन करनेसे जिस प्रकार नरकसे भी छुटकारा मिल जाता है, वह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। आदिपुरुष परमात्माके नामोंकी थोड़ी-सी भी स्मृति सञ्चित पापोंकी राशिका तत्काल नाश कर देती है, यह बात प्रत्यक्ष देखी गयी है। फिर उन जनार्दनके नामोंका भलीभाँति कीर्तन करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होगी, इसके लिये तो कहना ही क्या है।*

---

* स्वल्पापि नामस्मृतिरादिपुंसः क्षयं करोत्याहितपापराशेः।
प्रत्यक्षतः किं पुनरत्र दृष्टं संकीर्तिते नाम्नि जनार्दनस्य॥ (२२९। ८३)

माघस्नानके लिये मुख्य-मुख्य तीर्थ और नियम

राजा दिलीपने पूछा—मुने! आप इक्ष्वाकुवंशके गुरु और महात्मा हैं। आपको नमस्कार है। माघस्नानमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंके लिये कौन-कौन-से मुख्य तीर्थ हैं? उनका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। मैं सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! माघमास आनेपर बस्तीसे बाहर जहाँ-कहीं भी जल हो, उसे सब ऋषियोंने गङ्गाजलके समान बतलाया है; तथापि मैं तुमसे विशेषत: माघस्नानके लिये मुख्य-मुख्य तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। पहला है—तीर्थराज प्रयाग। वह बहुत विख्यात तीर्थ है। प्रयाग सब तीर्थोंमें कामनाकी पूर्ति करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। उसके सिवा नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, उज्जैन, सरयू, यमुना, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्रका सङ्गम, गङ्गा-सागर-संगम, काञ्ची, त्र्यम्बकतीर्थ, सप्त-गोदावरीका तट, कालञ्जर, प्रभास, बदरिकाश्रम, महालय, ओंकारक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र— जगन्नाथपुरी, गोकर्ण, भृगुकर्ण, भृगुतुङ्ग, पुष्कर, तुङ्गभद्रा, कावेरी, कृष्णा-वेणी, नर्मदा, सुवर्णमुखरी तथा वेगवती नदी— ये सभी माघमासमें स्नान करनेवालोंके लिये मुख्य तीर्थ हैं। गया नामक जो तीर्थ है, वह पितरोंके लिये तृप्तिदायक और हितकर है। ये भूमिपर विराजमान तीर्थ हैं, जिनका मैंने तुमसे वर्णन किया है। राजन्! अब मानसतीर्थ बतलाता हूँ, सुनो। उनमें भलीभाँति स्नान करनेसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रिय-निग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ, आर्जव (सरलता)-तीर्थ, दानतीर्थ, दम (मनोनिग्रह)-तीर्थ, सन्तोषतीर्थ, ब्रह्मचर्यतीर्थ, नियमतीर्थ, मन्त्र-जपतीर्थ, प्रियभाषणतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, धैर्यतीर्थ, अहिंसातीर्थ, आत्मतीर्थ, ध्यानतीर्थ और शिवस्मरणतीर्थ— ये

सभी मानसतीर्थ हैं। मनकी शुद्धि सब तीर्थोंसे उत्तम तीर्थ है। शरीरसे जलमें डुबकी लगा लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिसने मन और इन्द्रियोंके संयममें स्नान किया है, वास्तवमें उसीका स्नान सफल है; क्योंकि वह पवित्र एवं स्नेहयुक्त चित्तवाला माना गया है।*

जो लोभी, चुगलखोर, क्रूर, दम्भी और विषय-लोलुप है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके भी पापी और मलिन ही बना रहता है; केवल शरीरकी मैल छुड़ानेसे मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनकी मैल धुलनेपर ही वह अत्यन्त निर्मल होता है। जलचर जीव जलमें ही जन्म लेते और उसीमें मर जाते हैं; किन्तु इससे वे स्वर्गमें नहीं जाते, क्योंकि उनके मनकी मैल नहीं धुली रहती। विषयोंमें जो अत्यन्त आसक्ति होती है, उसीको मानसिक मल कहते हैं। विषयोंकी ओरसे वैराग्य हो जाना ही मनकी निर्मलता है। दान, यज्ञ, तपस्या, बाहर-भीतरकी शुद्धि और शास्त्र-ज्ञान भी तीर्थ ही हैं। यदि अन्तःकरणका भाव निर्मल हो तो ये सब-के-सब तीर्थ ही हैं। जिसने इन्द्रिय-समुदायको काबूमें कर लिया है वह मनुष्य जहाँ-जहाँ निवास करता है, वहीं-वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ प्रस्तुत हैं। जो ज्ञानसे पवित्र, ध्यानरूपी जलसे परिपूर्ण और रागद्वेषरूपी मलको धो देनेवाला है, ऐसे मानसतीर्थमें जो स्नान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। राजन्! यह मैंने तुम्हें मानसतीर्थका लक्षण बतलाया है।

---

* सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः॥
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च। दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमेव च॥
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं नियमस्तीर्थमुच्यते। मन्त्राणां तु जपस्तीर्थं तीर्थं तु प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थमहिंसा तीर्थमेव च। आत्मतीर्थं ध्यानतीर्थं पुनस्तीर्थं शिवस्मृतिः॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं विशुद्धिर्मनसः पुनः। न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते॥
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिस्निग्धमना मतः। (२३७। १२—१७)

अब भूतलके तीर्थोंकी पवित्रताका कारण सुनो। जैसे शरीरके कुछ भाग परम पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीके भी कुछ स्थान अत्यन्त पुण्यमय माने जाते हैं। भूमिके अद्भुत प्रभाव, जलकी शक्ति और मुनियोंके अनुग्रहपूर्वक निवाससे तीर्थोंको पवित्र बताया गया है; इसलिये भौम और मानस सभी तीर्थोंमें जो नित्य स्नान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। प्रचुर दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन करके भी मनुष्य उस फलको नहीं पाता जो उसे तीर्थोंमें जानेसे प्राप्त होता है। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर और मन भलीभाँति काबूमें हों तथा जो विद्या, तप और कीर्तिसे सम्पन्न हो, वह तीर्थके फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रहसे निवृत्त, जिस-किसी वस्तुसे भी सन्तुष्ट रहनेवाला और अहङ्कारसे मुक्त है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त हो तीर्थोंकी यात्रा करनेवाला धीर पुरुष कृतघ्न हो तो भी शुद्ध हो जाता है; फिर जो शुद्ध कर्म करता है, उसकी तो बात ही क्या है? वह मनुष्य पशु-पक्षियोंकी योनिमें नहीं पड़ता, बुरे देशमें जन्म नहीं लेता, दुःखका भागी नहीं होता, स्वर्गलोकमें जाता और मोक्षका उपाय भी प्राप्त कर लेता है। अश्रद्धालु, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और केवल युक्तिवादका सहारा लेनेवाला—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थफलके भागी नहीं होते। जो शास्त्रोक्त तीर्थोंमें विधिपूर्वक विचरते और सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करते हैं वे धीर मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। तीर्थमें अर्घ्य और आवाहनके बिना ही श्राद्ध करना चाहिये। वह श्राद्धके योग्य काल हो या न हो, तीर्थमें बिना विलम्ब किये श्राद्ध और तर्पण करना उचित है; उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। अन्य कार्यके प्रसङ्गसे भी तीर्थमें पहुँच जानेपर स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे तीर्थयात्राका नहीं, परन्तु तीर्थस्नानका फल अवश्य प्राप्त होता है। तीर्थमें नहानेसे पापी मनुष्योंके पापकी शान्ति

होती है। जिनका हृदय शुद्ध है, उन मनुष्योंको तीर्थ शास्त्रोक्त फल प्रदान करनेवाला होता है। जो दूसरेके लिये तीर्थयात्रा करता है, वह भी उसके पुण्यका सोलहवाँ अंश प्राप्त कर लेता है। कुशकी प्रतिमा बनाकर तीर्थके जलमें उसे स्नान करावे। जिसके उद्देश्यसे उस प्रतिमाको स्नान कराया जाता है, वह पुरुष तीर्थस्नानके पुण्यका आठवाँ भाग प्राप्त करता है। तीर्थमें जाकर उपवास करना और सिरके बालोंका मुण्डन कराना चाहिये। मुण्डनसे मस्तकके पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थमें पहुँचे, उसके पहले दिन उपवास करे और दूसरे दिन श्राद्ध एवं दान करे। तीर्थके प्रसङ्गमें मैंने श्राद्धको भी तीर्थ बतलाया है। यह स्वर्गका साधन तो है ही, मोक्षप्राप्तिका भी उपाय है।

इस प्रकार नियमका आश्रय ले माघमासमें व्रत ग्रहण करना चाहिये और उस समय ऐसी ही तीर्थयात्रा करनी चाहिये। माघमासमें स्नान करनेवाला पुरुष सब जगह कुछ-न-कुछ दान अवश्य करे। बेर, केला और आँवलेका फल, सेरभर घी, सेरभर तिल, पान, एक आढक (सोलह सेर) चावल, कुम्हड़ा और खिचड़ी—ये नौ वस्तुएँ प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान करनी चाहिये। जिस किसी प्रकार हो सके, माघमासको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। किञ्चित् सूर्योदय होते-होते माघस्नान करना चाहिये। तथा माघस्नान करनेवाले पुरुषको यथाशक्ति शौच-सन्तोष आदि नियमोंका पालन करना चाहिये। विशेषत: ब्राह्मणों और साधु-संन्यासियोंको पकवान भोजन कराना चाहिये। जाड़ेका कष्ट दूर करनेके लिये बोझ-के-बोझ सूखे काठ दान करे। रूईभरा अंगा, शय्या, गद्दा, यज्ञोपवीत, लाल वस्त्र, रूईदार रजाई, जायफल, लौंग, बहुत-से पान, विचित्र-विचित्र कम्बल, हवासे बचानेवाले गृह, मुलायम जूते और सुगन्धित उबटन दान करे। माघस्नानपूर्वक घी, कम्बल, पूजनसामग्री, काला अगर, धूप, मोटी बत्तीवाले दीप और भाँति-

भाँतिके नैवेद्यसे माघस्नानजनित फलकी प्राप्तिके लिये भगवान् माधवकी पूजा करे। माघमासमें डुबकी लगानेसे सारे दोष नष्ट हो जाते हैं और अनेकों जन्मोंके उपार्जित सम्पूर्ण महापाप तत्काल विलीन हो जाते हैं। यह माघस्नान ही मङ्गलका साधन है, यही वास्तवमें धनका उपार्जन है तथा यही इस जीवनका फल है। भला माघस्नान, मनुष्योंका कौन-कौन-सा कार्य नहीं सिद्ध करता? वह पुत्र, मित्र, कलत्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्षका भी देनेवाला है।

माघमासके स्नानसे सुव्रतको दिव्यलोककी प्राप्ति

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! सुनो, मैं तुमसे सुव्रतके चरित्रका वर्णन करता हूँ। यह शुभ प्रसङ्ग श्रोताओंके समस्त पापोंको तत्काल हर लेनेवाला है। नर्मदाके रमणीय तटपर एक बहुत बड़ा अग्रहार—ब्राह्मणोंको दानमें मिला हुआ गाँव था। वह लोगोंमें अकलङ्क नामसे विख्यात था, उसमें वेदोंके ज्ञाता और धर्मात्मा ब्राह्मण निवास करते थे। वह धन-धान्यसे भरा था और वेदोंके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको मुखरित किये रहता था। उस गाँवमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो सुव्रतके नामसे विख्यात थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था। वेदार्थके वे अच्छे ज्ञाता थे, धर्मशास्त्रोंके अर्थका भी पूर्ण ज्ञान रखते थे, पुराणोंकी व्याख्या करनेमें वे बड़े कुशल थे। वेदाङ्गोंका अभ्यास करके उन्होंने तर्कशास्त्र, ज्यौतिषशास्त्र, गजविद्या, अश्वविद्या, चौंसठ कलाएँ, मन्त्रशास्त्र, सांख्यशास्त्र तथा योगशास्त्रका भी अध्ययन किया था। वे अनेक देशोंकी लिपियाँ और नाना प्रकारकी भाषाएँ जानते थे। यह सब कुछ उन्होंने

धन कमानेके लिये ही सीखा था तथा लोभसे मोहित होनेके कारण अपने भिन्न-भिन्न गुरुओंको गुरुदक्षिणा भी नहीं दी थी। उपायोंके जानकार तो थे ही, उन्होंने उक्त उपायोंसे बहुत कुछ धनका उपार्जन किया। उनके मनमें बड़ा लोभ था; इसलिये वे अन्यायसे भी धन कमाया करते थे। जो वस्तु बेचनेके योग्य नहीं है, उसको भी बेचते और जंगलकी वस्तुओंका भी विक्रय किया करते थे; उन्होंने चाण्डाल आदिसे भी दान लिया, कन्या बेची तथा गौ, तिल, चावल, रस और तेलका भी विक्रय किया। वे दूसरोंके लिये तीर्थमें जाते, दक्षिणा लेकर देवताकी पूजा करते, वेतन लेकर पढ़ाते और दूसरोंके घर खाते थे; इतना ही नहीं, वे नमक, पानी, दूध, दही और पक्वान्न भी बेचा करते थे। इस तरह अनेक उपायोंसे उन्होंने यत्नपूर्वक धन कमाया। धनके पीछे उन्होंने नित्य-नैमित्तिक कर्म तक छोड़ दिया था। न खाते थे, न दान करते थे। हमेशा अपना धन गिनते रहते थे कि कब कितना जमा हुआ। इस प्रकार उन्होंने एक लाख स्वर्णमुद्राएँ उपार्जित कर लीं। धनोपार्जनमें लगे-लगे ही वृद्धावस्था आ गयी और सारा शरीर जर्जर हो गया। कालके प्रभावसे समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। अब वे उठने और कहीं आने-जानेमें असमर्थ हो गये। धनोपार्जनका काम बन्द हो जानेसे स्त्रीसहित ब्राह्मण देवता बहुत दुःखी हुए। इस प्रकार चिन्ता करते-करते जब उनका चित्त बहुत व्याकुल हो गया, तब उनके मनमें सहसा विवेकका प्रादुर्भाव हुआ।

सुव्रत अपने-आप कहने लगे—मैंने नीच प्रतिग्रहसे, नहीं बेचने योग्य वस्तुओंके बेचनेसे तथा तपस्या आदिका भी विक्रय करनेसे यह धन जमा किया है; फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। मेरी तृष्णा अत्यन्त दुस्सह है। यह मेरु पर्वतके समान असंख्य सुवर्ण पानेकी अभिलाषा रखती है। अहो! मेरा मन महान् कष्टदायक और

सम्पूर्ण क्लेशोंका कारण है। सब कामनाओंको पाकर भी यह फिर दूसरी-दूसरी नवीन कामनाओंको प्राप्त करना चाहता है। बूढ़े होनेपर सिरके बाल पक जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं, आँख और कानोंकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है; किन्तु एक तृष्णा ही ऐसी है, जो उस समय भी नित्य तरुण होती जाती है। जिसके मनमें कष्टदायिनी आशा मौजूद है, वह विद्वान् होकर भी अज्ञानी है, अशान्त है, क्रोधी है और बुद्धिमान् होकर भी अत्यन्त मूर्ख है। आशा मनुष्योंको नष्ट करनेवाली है, उसे अग्निके समान जानना चाहिये; अतः जो विद्वान् सनातन पदको प्राप्त करना चाहता हो, वह आशाका परित्याग कर दे। बल, तेज, यश, विद्या, सम्मान, शास्त्रज्ञान तथा उत्तम कुलमें जन्म—इन सबको आशा शीघ्र ही नष्ट कर देती है। मैंने भी इसी प्रकार बहुत क्लेश उठाकर यह धन कमाया है। वृद्धावस्थाने मेरे शरीरको भी गला दिया और सारा बल भी हर लिया। अबसे मैं श्रद्धापूर्वक परलोक सुधारनेके लिये प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके ब्राह्मण देवता जब धर्मके मार्गपर चलनेके लिये उत्सुक हुए, उसी दिन रातमें कुछ चोर उनके घरमें घुस आये। आधी रातका समय था; आततायी चोरोंने ब्राह्मणको खूब कसकर बाँध दिया और सारा धन लेकर चंपत हुए। चोरोंके द्वारा धन छिन जानेपर ब्राह्मण अत्यन्त दारुण विलाप करने लगा—'हाय! मेरा धन कमाना धर्म, भोग अथवा मोक्ष—किसी भी काममें नहीं आया। न तो मैंने उसे भोगा और न दान ही किया। फिर किसलिये धनका उपार्जन किया? हाय! हाय! मैंने अपने आत्माको धोखेमें डालकर यह क्या किया? सब जगहसे दान लिया और मदिरातकका विक्रय किया। पहले तो एक ही गौका प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये। यदि एकको ले लिया तो दूसरीका प्रतिग्रह लेना कदापि उचित नहीं है। उस गौको भी यदि बेच दिया

जाय तो वह सात पीढ़ियोंको दग्ध कर देती है। इस बातको जानते हुए भी मैंने लोभवश ऐसे-ऐसे पाप किये हैं। धन कमानेके जोशमें मैंने एक दिन भी एकाग्रचित्त होकर अच्छी तरह सन्ध्योपासना नहीं की। अगर्भ (ध्यानरहित) या सगर्भ (ध्यानसहित) प्राणायाम भी नहीं किया। तीन बार जल पीकर और दो बार ओठ पोंछकर भलीभाँति आचमन नहीं किया। उतावली छोड़कर और हाथमें कुशकी पवित्री लेकर मैंने कभी गायत्रीमन्त्रका वाचिक, उपांशु अथवा मानस जप भी नहीं किया। जीवोंका बन्धन छुड़ानेवाले महादेवजीकी आराधना नहीं की। जो मन्त्र पढ़कर अथवा बिना मन्त्रके ही शिवलिङ्गके ऊपर एक पत्ता या फूल डाल देता है, उसकी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है; किन्तु मैंने कभी ऐसा नहीं किया। सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुको कभी सन्तुष्ट नहीं किया। पाँच प्रकारकी हत्याओंके पाप शान्त करनेवाले पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं किया। स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले अतिथिके सत्कारसे भी वञ्चित रहा। संन्यासीका सत्कार करके उसे अन्नकी भिक्षा नहीं दी। ब्रह्मचारीको विधिपूर्वक अतिथिके योग्य भोजन नहीं दिया।

'मैंने ब्राह्मणोंको भाँति-भाँतिके सुन्दर एवं महीन वस्त्र नहीं अर्पण किये। सब पापोंका नाश करनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें घीसे भीगे हुए मन्त्रपूत तिलोंका हवन नहीं किया। श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, मण्डल ब्राह्मण, पुरुषसूक्त और परमपवित्र शतरुद्रिय मन्त्रका जप नहीं किया। पीपलके वृक्षका सेवन नहीं किया। अर्कत्रयोदशीका व्रत त्याग दिया। वह भी यदि रातको अथवा शुक्रवारके दिन पड़े, तो तत्काल सब पापोंको हरनेवाली है; किन्तु मैंने उसकी भी उपेक्षा कर दी। ठंढी छायावाले सघन वृक्षका पौधा नहीं लगाया। सुन्दर शय्या और मुलायम गद्देका दान नहीं किया। पंखा, छतरी, पान तथा मुखको सुगन्धित

करनेवाली और कोई वस्तु भी ब्राह्मणको दान नहीं दी। नित्य श्राद्ध, भूतबलि तथा अतिथि-पूजा भी नहीं की। उपर्युक्त उत्तम वस्तुओंका जो लोग दान करते हैं, वे पुण्यके भागी मनुष्य यमलोकमें यमराजको, यमदूतोंको और यमलोककी यातनाओंको नहीं देखते; किन्तु मैंने यह भी नहीं किया। गौओंको ग्रास नहीं दिया। उनके शरीरको कभी नहीं खुजलाया, कीचड़में फँसी हुई गौको, जो गोलोकमें सुख देनेवाली होती है, मैंने कभी नहीं निकाला। याचकोंको उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर कभी सन्तुष्ट नहीं किया। भगवान् विष्णुकी पूजाके लिये कभी तुलसीका वृक्ष नहीं लगाया। शालग्रामशिलाके तीर्थभूत चरणामृतको न तो कभी पीया और न मस्तकपर ही चढ़ाया। एक भी पुण्यमयी एकादशी तिथिको उपवास नहीं किया। शिवलोक प्रदान करनेवाली शिवरात्रिका भी व्रत नहीं किया। वेद, शास्त्र, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और अटारी आदि वस्तुएँ इस लोकसे जाते समय मेरे साथ नहीं जायँगी। अब तो मैं बिलकुल असमर्थ हो गया; अतः कोई उद्योग भी नहीं कर सकूँगा। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। हाय! मुझपर बड़ा भारी कष्ट आ पड़ा। मेरे पास परलोकका राहखर्च भी नहीं है।'

इस प्रकार व्याकुलचित्त होकर सुव्रतने मन-ही-मन विचार किया—'अहो! मेरी समझमें आ गया, आ गया, आ गया। मैं धन कमानेके लिये उत्तम देश काश्मीरको जा रहा था। मार्गमें भागीरथी गङ्गाके तटपर मुझे कुछ ब्राह्मण दिखायी दिये, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। वे प्रातःकाल माघस्नान करके बैठे थे। वहाँ किसी पौराणिक विद्वान्ने उस समय यह आधा श्लोक कहा था—

माघे निमग्नाः सलिले सुशीते
विमुक्तपापास्त्रिदिवं प्रयान्ति॥

(२३८। ७८)

'माघमासमें शीतल जलके भीतर डुबकी लगानेवाले मनुष्य पापमुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं।'

पुराणमेंसे मैंने इस श्लोकको सुना है। यह बहुत ही प्रामाणिक है; अतः इसके अनुसार मुझे माघका स्नान करना ही चाहिये।

मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके सुव्रतने अपने मनको सुस्थिर किया और नौ दिनोंतक नर्मदाके जलमें माघमासका स्नान किया। उसके बाद स्नान करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी। वे दसवें दिन किसी तरह नर्मदाजीमें गये और विधिपूर्वक स्नान करके तटपर आये। उस समय शीतसे पीड़ित होकर उन्होंने प्राण त्याग दिया। उसी समय मेरुगिरिके समान तेजस्वी विमान आया और माघस्नानके प्रभावसे सुव्रत उसपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकको चले गये। वहाँ एक मन्वन्तरतक निवास करके वे पुनः इस पृथ्वीपर ब्राह्मण हुए। फिर प्रयागमें माघस्नान करके उन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया।

पद्मपुराणान्तर्गत माघमास-माहात्म्य सम्पूर्ण